

Guess Paper

ON

भक्ति एवं रीतिकाल के कवि

(जायसी, सूर, तुलसी केशव, बिहारी)

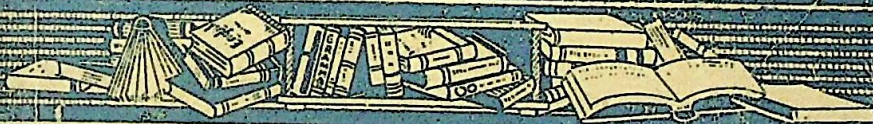
[बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए]

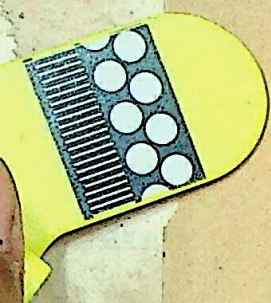
द्वितीय भाग

प्रश्नोत्तर

एवं

व्याख्या





की ह
उ
करता
को अ
कला-
पक्ष य
ज
का क
रस की
है। वि
न्त मा
पर ह
उमड़

भक्ति और रीतिकाल के कवि

[जायसी, सुर, तुलसी, केशव, विहारी]

प्रश्नोत्तर—

जायसी—

प्रश्न १—जायसी के काव्य की समीक्षा भाव-पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से कीजिए ।

उत्तर—कुशल कवि कल्पना के द्वारा अपनी भाव सम्पदा का चयन करता है और उसे भाव-सम्पदा को सफल अभिव्यक्ति के माध्यम से पाठकों को आनन्द निमग्न करता है । काव्य की सफलता के लिए भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों का सफल और सन्तुलित समन्वय आवश्यक है । भाव पक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कला-पक्ष उसका शरीर है ।

जायसी जिस प्रकार भाव-सम्पदा के धनी है, उस प्रकार से उनके काव्य का कला-पक्ष भी सफल है । जायसी के प्रमुख काव्य पञ्चावत में शृंगार रस की प्रधानता है । संयोग और वियोग दोनों की सफल अभिव्यक्ति हुई है । किन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग-वर्णन में जायसी की अनुभूति अत्यन्त मार्मिक हो गई है । वास्तविकता यह है कि सूफी कवि आँसुओं पर ही रीक्षा है । नागमती के एक-एक कथन में वियोग-वारीश डमड़ पड़ा है । उसका निम्न वियोगिनी रूप कितना मर्मस्पर्शी है—

विरह बान तस लाग न डोली ।

रक्त पसीज भीजि गई चोली ॥

सुखा दिया हार भा भारी ।

हरे-हरे प्राण तजहिं सब नारी ॥

+ + +

प्राण पयान होत को राखा ?

कौ सुलाव पीतम की भाखा ?

नागमती की दशा 'नारहमासा' में अत्यन्त कारुणिक हो जाती है । वह अपना रानीपन भूल कर साधारण नारी की भाव-भूमि पर आ जाती है । वह साधारण नारी की तरह कहती है—

पुख्य नखत सिर ऊपर आवा ।

हौं बिनु नाह मंदिर को छावा ॥

मघा के नक्षत्र के समान ही उसके नेत्रों से आँसुओं की वर्षा होती है—

“वरसहि मघा भकारि भकोरी ।

मोरे दोउ नैन चुवहि जस ओरी ॥”

सखियों को हिंडोला भूलती देखकर उसके हृदय में विरहानुभूति अधिक तीव्र हो जाती है । वह कहती है—

सखिन सजेउ प्रिय संग हिंडोला ।

हरि हरि भूमि कुसुंभी चोला ॥

हिय हिंडोल जस डोलइ मोरा ।

विरह भुलाइ देइ भक्त भोरा ॥

नागमती विरह में ससीम से असीम के सीमा पहुँच जाती है । वह प्रियतम में पथ को पलकों से बुहारने और शीश को चरण बनकर तक चलने को प्रस्तुत होकर कहती है—

वह पथ पलकन्ह जाइ बुहारों ।

शीश चरण कै चलौ सिधारों ॥

अन्त में वह अपने शरीर को राख करके प्रिय के पथ में झाल देने की इच्छा करती हुई कहती है—

यह तन जारों चार कै,

कहाँ कि पवन उडाव ।

मकु तिहि मारग मैंह पड़े,

कन्त धरै जँह पाँव ॥

सत्यता यह है कि सूफी सन्त जरसी जायसी का हृदय विरह की मार्मिक अनुभूति से भरा हुआ था । इसी अनुभूति को उन्होंने नागमती के वियोग वर्णन के रूप में उड़ेल दिया है ।

संयोग-शृंगार—

वियोग-वर्णन की तरह जायसी का संयोग-वर्णन स्वाभाविक और मार्मिक नहीं हो सका है। इस अस्वाभाविकता का मुख्य कारण है कि उन्होंने लौकिक-प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का संकेत किया है। साधक को जब गुरु से ब्रह्म का आभास हो जाता है तब वह सब ओर से मुख मोड़कर उसकी खोज में निकल पड़ता है। यही दशा जायसी के पद्मावत काव्य के नायक रतनसेन की है। हीरामन रूपी मुख से पद्मावती रूपी ईश्वर की चर्चा सुनकर वह प्रेम-वियोगी बनकर निकल पड़ता है। उसका समस्त प्रेमोत्साह ईश्वर से जीव का मिलन के प्रति उत्साह प्रतीत होने लता है।

शिव-मन्दिर में स च्चात्कार हो जाने पर दोनों ओर से समान प्रेम लक्षित होने लगता और लौकिक पक्ष में भी प्रेम का स्वाभाविक विकास होने लगता है। इसके पश्चात् प्रेम के संयोग पक्ष के सभी वर्णन आये हैं। उही पक्ष रूप में षट्श्रुत वर्णन किया गया है। रतनसेन और पद्मावती के मिलन में भी अवसर पाते ही कवि पारलौकिक संकेत देता चलता है। निम्न कथन में देखिए—

“करि-सिंगार तापंटक जाऊँ ।

ओहि देखौं सब ठामहिं ठऊँ ॥

इह नैनन मंह उहै पियारा ।

तन-मन से नहिं होइ निआरा ॥”

कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य वर्णन में विश्व-व्यापी सौन्दर्य की भाँकी दिखाई है। कवि पद्मनी की वरुणी-वाणवाली से समस्त सृष्टि को बिधा देख रहा है—

“वरुनी का वरनौ इमि बनी ।

साधे बान जानु दुह अनी ॥

उन्ह बानन्ह अस को जोन मारा ।

बैधि रइहा सगरौ संसारा ॥”

जायसी फारसी-पद्धति के प्रभाव से बीच-बीच में इस प्रकार का वर्णन करने लगते हैं जो कथानक में तो बाधा उत्पन्न ही करता है वर्णन को अस्वाचिक भी बना देता है। उदाहरण के लिये प्रथम समागम में रतनसेन का रसायनी क्रियाओं का वर्णन ऐसा ही प्रसंग है। कहीं-कहीं पर जायसी परदे की बात कहकर अश्लीलता की सीमा को भी लाँघ जाते हैं। ऐसे स्थलों पर पाठक को न तो अलौकिकता की ही भाँकी मिलती है और शुद्ध लौकिक प्रेम की ही मिलती है केवल विलास की अफीमची मादकता।

एक उदाहरण देखिए—

“भयौ जूझ जस रावन रामा ।
सेज विधसि कीन्ह संग्रामा ॥
लीन्ह लंक कंचन-गढ़ टूटा ।
कीन्ह सिंगार, रहा सब लूटा ॥
सब निसि सेज मिला ससि सूरु ।
हार-चीर बलया मै चूरु ॥”

परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं। प्रायः जायसी के प्रेम-वर्णन में स्वाभाविकता है। उसमें फारसी पद्धति के एकान्तिक प्रेम पर भारतीयता का आवरण है। रतनसेन और पद्मावती दोनों के पारस्परिक प्रेम का विशद चित्रण होने से मानवी शैली का दीवानापन अधिक नहीं आने पाया है। सूफी विचार धारा पर 'पद्मावत' का प्रेम खरा उतरता है। लौकिक दृष्टि से उसमें रूप लिप्ता और एकान्तिक प्रेम ही अधिक है।

शृंगार के अतिरिक्त जायसी के पद्मावत में वात्सल्य, वीर और करुणारस की भी सफल अभिव्यक्ति है। परन्तु ये सभी शृंगार रस के सहायक के रूप में आये हैं। वात्सल्य रस की भाँकी दो स्थलों पर मिलती है। रतनसेन के योगी बनकर चलने के प्रसंग में तथा रतनसेन को छुड़ाने के लिए चलते समय बादल द्वारा अपनी माता से विदाई लेने के अवसर पर। निम्न पंक्तियाँ रतनसेन की माता की चिन्ता के रूप में प्रत्येक माता की पुत्र के लिए चिन्ता प्रतीत होने लगती है—

का
ता है
समा-
कहीं-
ो भी
हाँकी
की

सब दिन रहेहु करत तुम भोगू ।
सो कैसे साधव तप योगू ॥
+ + +
कैसे सडव खनहि खन भूखा ।
कैसे खाव कुरकुटा रूखा ॥

संयोग के उपरान्त वीर रस का ही सजीव चित्रण हुआ है ।
सेना की सजावट, उसकी तैयारी युद्ध का वर्णन जायसी ने बड़ी कुशलता
से किया है ।

गोरा-बादल के युद्ध खंड में युद्ध के स्वाभाविक वर्णन वीर रस की
सफल अभिव्यक्ति हुई है । युद्ध वर्णन में भयानक और वीभत्स रसों
की भाँकी मिल जाती है । रतनसेन की मृत्यु पर कण्ठा-रस की धारा
प्रवाहित हो उठी है ।

इसी प्रकार जायसी काव्य-भाव पक्ष की दृष्टि से पूर्ण रूप से सफल
पद्मावत के भोले-भाले शब्दों में भावों की अत्यन्त गम्भीर और
व्यापक व्यंजना हुई है ।

में
यता
का
आने
है ।
।
और
के
लती
की
ने के
त्येक

जायसी को कथानक के मार्मिक स्थलों की पूरी पहिचान है ।
यह उनके भाव-पक्ष की सबसे अधिक सफलता है । 'पद्मावत' में ऐसे
बहुत से स्थल हैं—जैसे मायके में कुमारियों की स्वच्छन्द कीड़ा, रतन के
प्रस्थान पर नागमती का शोक प्रेम-मार्ग के कष्ट, रतनसेन की सूली
व्यवस्था, नागमती का वियोग-वर्णन और प्रेम सन्देश, गोरा बादल की
स्वामि-भक्ति इत्यादि । अतः कहा जा सकता है कि जायसी सभी मार्मिक
स्थलों को 'पद्मावत' से पहिचाना है । तुलसी के अतिरिक्त अन्य किसी
कवि का भाव-पक्ष पर इतना व्यापक अधिकार नहीं है जायसी ने अपनी
मार्मिक अनुभूति से काव्य में रसात्मकता ला दी है ।

कला-पक्ष—

भाव-पक्ष की तरह ही जायसी कला-पक्ष के भी धनी हैं । भाषा
अलंकार आदि प्रत्येक दृष्टि से उनको सफलता मिली है ।

भाषा-शैली—

जायसी की काव्य-भाषा अवधी है। उन्होंने पूर्वी अवधी को स्थान दिया है। उनकी भाषा में ग्राम्य-माधुर्य है वह परिमार्जित, शुद्ध और साहित्यिक नहीं है। किन्तु वह भावानुकूल है। उसमें भावों की मधुर व्यंजना हुई है। कहीं-कहीं पर दिनउर, ससहर, विसहर आदि पुराने और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। कुछ व्याकरण सम्बन्धी भूलें भी मिलती हैं। किन्तु उनका वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित है। उसमें शिथिलता नहीं आने पाई है। भाषा पर कुछ फारसी का भी प्रभाव है।

जायसी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनके काव्य में उक्तियाँ और सूक्तियाँ हृदय को वेधने वाली हैं। शैली आकर्षण पूर्ण है।

छन्द-योजना—

जायसी ने अपने काव्य में दोहा चौपाई पद्धति का प्रयोग किया है। उन्होंने सात चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे का क्रम रखा है। जायसी को छन्दशास्त्र का पूरा ज्ञान नहीं था, इसलिए उनसे कहीं-कहीं पर भूलें भी हो गई हैं। कहीं-कहीं पर छन्द-शास्त्र की दृष्टि से दोहों और चौपाइयों में मात्राएँ कम हो गई हैं।

अलंकार-विधान—

जायसी के काव्य में अलंकार-योजना भाव-प्रकाशन में सहायक बनकर उपस्थित हुई है। उन्होंने केवल बुद्धिमत्ता दिखाने के लिए ही अलंकारों का नहीं किया है। जायसी के काव्य में अलंकारों की सहायता भाव की मार्मिक व्यंजना हुई है। कहीं-कहीं पर तो अलंकारों के सहयोग से भाव स्पष्ट होकर अत्यन्त मार्मिक हो गए हैं। नागमती के वियोग-वर्णन में अलंकारों की सहायता भाव-प्रकाशन अत्यन्त अनुभूतिपूर्ण हो गया है। विरहणी को विरह में रात काटे नहीं कटती। वह मन बहलाने के लिए बाँणा बजाना प्रारम्भ करती है। किन्तु परिणाम विपरीत होता है। बाँणा के मधुर राग को सुनकर चन्द्र-रथ के हिरण स्थिर हो जाते हैं।

रात भी आगे नहीं बढ़ती । वह विरह में सम्पूर्ण रात जागती रहती है—

कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी ।
तिल-तिल भर युग-युग जिमि गाढ़ी ॥
गहै बोन मकु रैनि विहाई ।
ससि भाहन तैंह रहे उनाई ॥
पुनि धनि सिह उरैह लागै ।
ऐसिहि विथा रैनि सब जागै ॥

उपयुक्त उदाहरण में उपमा और उत्प्रेक्षा के सहारे जायसी ने मार्मिक भाव व्यंजना की है । जायसी ने अतिशयोक्ति का बहुत प्रयोग किया है । किन्तु उनकी अतिशयोक्ति में ऊहा नहीं है और न बात की करामत ही है । अतिशयोक्ति के सहारे जायसी ने वस्तुस्थिति पर प्रकाश डाला है । निम्न उदाहरण से विरहिणी की दुर्बलता का पता चलता है :—

हाड़ भये सब किंगरी,
नसै भईं सब तौंति ।
रोंवै, रोंवै से धुनि उठै,
कहाँ विथा केहि भौंति ॥

निम्न उदाहरण में उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य दृष्टव्य है । प्रस्तुत में अप्रस्तुत का सुन्दर विधान है—

दसन चौक बैठे जनु हीरा ।
औ बिच-बिच रँग स्याम गंभीरा ॥
जस भादों-निसि दामिनि हीसी,
चमकि उठी तस बनी बतीसी ॥

कहीं-कहीं पर उपमान की खोजने में जायसी को असफलता मिली है । उनके उपमान की भ्रंश दृश्य की उपस्थित करने लगते हैं । उदाहरण के लिए जायसी की कमर की समानता भिड़ की कमर से देना तथा शृंगार रस में रतनसेन की समता देना ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी महाकवि थे। भाव-पद्म की तरह कला-पद्म पर भी उनको सफल अधिकार थे। उनके काव्य की भाषा सरलता और मधुरता से युक्त है। जायसी का अलंकार और छंद विधान भी सफल है।

नोट—प्रथम प्रश्न से सम्बन्धित अन्य प्रश्न।

प्रश्न २—जायसी के भाव पद्म की आलोचना कीजिए।

प्रश्न ३—जायसी के कलापद्म की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

प्रश्न ४—जायसी के काव्य में रस योजना पर विचार कीजिए।

प्रश्न ५—“पद्मावत के भोले-भाले शब्दों में भावों की गम्भीर व्यंजना हुई है।”

उपयुक्त कथन की समीक्षा कीजिए।

उपयुक्त सभी प्रश्न के उत्तर के लिए प्रश्न संख्या १ का उत्तर पढ़िए।

प्रश्न ६—जायसी के वियोग वर्णन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—काव्य में वियोग को प्रमुखता दी गई है। जो मार्मिकता और अनुभूति वियोग वर्णन में होती है, वह अन्य वर्णन में नहीं। कवि जगत रीझा ही आँसुओं पर है। तुलसी को सूर्य-चन्द्र तक विराट-ब्रह्म से विद्युद्द कर दिन-राक गता गत करते हुए दिखाई पड़ते हैं—

बछुड़े रवि-ससि इन नैनन ते। पावत दुःख घनेरो॥

जायसी के पद्मावत में नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय वस्तु है। ‘पद्मावत’ में वियोग के आश्रय रतनसेन, पद्मावती और नागमती हैं। फारसी मनसवी पद्धति के आधार पर होने के कारण विरह का प्रारम्भ नायक पदा से दिखाया गया है। लौकिक रूप में रतनसेन का विरह अस्वाभाविक दोखने लगता है किन्तु पारलौकिकता के रूप में देखने जीव (रतनसेन) का विरह ईश्वरीन्मुख (पद्मावती) प्रतीवहोने लगता है। यही दिशा मिलन से पूर्व पद्मावती है।

यदि शास्त्रीय दृष्टि से इसका विवेचन करें तो रतनसेन और पद्मावती का यह प्रेम—विरह के पूर्वराग के अन्तर्गत आयेगा। विरह के चार रूप प्रचलित हैं। विवाह से पूर्व प्रत्यक्ष मिलन, या स्वप्न-दर्शन, गुण-श्रवण आदि से उत्पन्न प्रेम, और किसी बाधा से फिर मिलन न होने के कारण विरह-जनित वेदना पूर्वराग के अन्तर्गत आयेगी। प्रिय के प्रवास से जो विरह-जनित वेदना होती है वह प्रवास के अन्तर्गत आयेगी। थोड़े समय की रूठने आदि की स्थिति को मान और प्रिय की मृत्यु की आशंका को कषणा-वियोग कहा जाता है। इनमें वास्तविक वियोग की अवस्था 'प्रवास' की दशा में ही आती है। इस दृष्टि से हम नागमती के विरह और रतनसेन के बन्दी हो जाने पर पद्मावत के विरह का विवेचन करते हुए जारसी के विरह-वर्णन सौन्दर्य पर प्रकाश डालेंगे। बन्दी प्रेमी को मुक्त कराने की लालसा से आकुल पद्मावती की लगन वियोग के दुःख और संयोग के सुख का स्वाभाविक रूप उपस्थित करती है :—

“पद्मावती मन रही जो भूरी। सुनत सरोवर हियगा पूरी।

आद्रा महि हुलास जिमि होई। सूख सोहाग आदर भर सोई ॥”

निम्न पंक्तियों में विरह का कितना हृदय-द्रावक चित्र है :—

“मरठँ मीन तन तलफै लागा।

विरह आई बैठा हुई कागा ॥”

नागमती एक आदर्श विरहिनी के रूप में हमारे सामने आती है। नागमती के हृदय-द्रावक विरह से युक्त निम्न पंक्तियाँ सदैव भावुक सहृदयों के हृदय में गूँजती रहती हैं :—

“वह पथ पलकन्ह जाइ बुझारौं।

सीस चरन कै चलौं सिधारौं ॥

शास्त्रीय दृष्टिकोण से नागमती आश्रय, रतनसेन आलंबन, पद्मावती का रतनसेन से मिलन, वारहमासा आदि उद्दीपन तथा नागमती का प्रलाप अनुभव के अन्तर्गत आयेगा।

विरह ने नागमती को इतना कृशांगी बना दिया है कि उसके शरीर में हड्डियाँ ही शेष रह गई हैं—

“रक्त न रहा विरह तन जरा ।

रती-रती होइ नैनन्ह ढरा ॥”

जायसी ने नागमती की कृशता को दिखाने के लिए अत्युक्ति से काम लिया है किन्तु फिर भी उस वर्णन में गाम्भीर्य का लोप नहीं हो सका । विहारी की तरह अत्युक्ति को खिलवाड़ और मज़ाक का विषय नहीं बनाया जायसी के वर्णन ने नायिका की कृशता का चित्र उपस्थित हो जाता है । देखिए—

“हाड़ भये सब किंगरी, नसँ भई सब तौँति ।

रोवँ रोवँ सो धुनि उठै, कहौँ विथा केहि भौँति ॥”

जायसी का विरह भारतीय पद्धति से प्रभावित न होकर फारस की पद्धति से प्रभावित है । इसलिए कहीं-कहीं पर वीभत्स वर्णन भी मिलता है । कई स्थानों पर इस फारसी के प्रभाव को देख सकते हैं—

“विरह सरागन्हि भूँजै मौँसू । गिरि-गिरि परत रक्त के आँसू ॥”

नागमती विरह की अवस्था में व्याकुल है । वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते, करते थक गई है । अन्त में वह प्रमोन्माद की अवस्था में पशु-पक्षियों को सहानुभूति दिखाती है । वह भौंरा और काग से सन्देश पहुँचाने को कहती है । नागमती अपनी सपत्नी पद्मावती के प्रति जो ईर्ष्या रखती है उसको स्पष्ट करके अपनी पत्नी हृदय की सच्ची भाँकी देती है । जायसी ने नागमती को एक साधारण स्त्री के रूप में देखा और उसका सच्चा वर्णन करके नारी के हृदयगत भावों को प्रदर्शित किया ।

जायसी ने प्रकृति को उद्दीप्तकारी के रूप में ही देखा । उन्होंने ‘वारह-मास’ में विरहिनी के दुःख को दिखाने का प्रयत्न किया है । प्रकृति नागमती के विरह को उद्दीप्त कर रही है । उसे असाढ़मास के मेषों को देखकर अत्यन्त दुःख होता है । बिजली की चमक उसे तलवार के समान लगती है और बूँदें उसके हृदय को वाणों के समान बँध देती हैं ।

जायसी की नागमती विरह की तन्मयता में अपने आप की सामान्य भाव-भूमि पर लाकर, आदर्श उपस्थित करती है । वह रानी न रह कर एक साधारण स्त्री के दृष्टिकोण से ही प्रकृति को देखती है । उसके हृदय

की दशा सामान्य भाव-भूमि पर होने के कारण उसकी वेदना संसार की वेदना हो जाती है। वह एक नारी है इस लिए जो दुर्बलताएँ एक नारी हृदय में हो सकती है वह सब नागमती में विद्यमान है। प्रिय के वियोग में रानी और दासी दोनों समान हैं। हृदय का साम्राज्य दोनों का समान है। यही कारण है कि जायसी का नागमती की विरह-दशा का चित्रण रसाभिव्यक्ति में इतना सफल है। पुष्प नक्षत्र के आते ही गाँव के लोग अपने अपने छप्पर और छत की मरम्मत करने लगते हैं। जायसी की नागमती भी महिलाओं की बात न करके साधारण स्त्री की तरह छानी-छप्पर की ही बात करती है। यही कारण है कि जायसी के विरह में लोक-पक्ष का आधिक्य है—

“पुष्प नखत सिर ऊपर आवा।

हाँ विनु नाह छपर को छावा ॥”

वर्षा की झड़ी भी नागमती को दाघ कर रही है। संयोगिनी तो घन-घोर वर्षा में चौक-चौक कर अपने प्रियतम की गोद में चिपक जाती है। लेकिन वियोगिनी के पास कोई चारा नहीं—

“अद्रा उनह उनह जिउ लेई।

बिनु पिउ हमहि को आदर देई ॥

सखिन रचा पिउ संग हिंडोला।

हरिहर भूमि कुसु भी चोला ॥

हिय हिंडोला अस डोलै भोरा।

विरह झुलाइ देह झकझोरा ॥”

विरहिणी की दशा अत्यन्त दयनीय है। यह स्वाभाविक ही है कि वह किसी को सुखी देख कर ईर्ष्या करें।

जायसी के बाहरमासे में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें हिन्दु-दाम्पत्य जीवन की अत्यन्त ही मार्मिक और हृदय-स्पर्शी भाँकी है।

जायसी ने विरह की दसों अवस्थाओं का चित्रण बड़ी सफलता से किया है। वियोग में नागमती प्रियतम की स्मृति करती हुई कह रही है—

“जिन्ह घर कन्ता से सुखी तिन गारौ औ गर्व ।

कंत पियारा बाहिरै हम सुख भूला सर्व ॥”

इस प्रकार कभी वह गुणों का स्मरण करती है और कभी ‘उन्माद’ की दशा में होकर ‘हे भौंरा ! हे काग ! कहकर विरह जनित संदेश भेजती है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जायसी का वियोग वर्णन केवल लालसाओं का हा हा कार मात्र ही नहीं है, अपितु उसमें त्याग और हृदय स्पर्शी सात्विक प्रेम का भी समावेश है । अस्युक्तियों में मार्मिक संवेदना भरी हुई है । इसमें विरह-वेदना का मार्मिक स्वरूप साकार हो उठा है । सारी सृष्टि विरह से व्याकुल प्रदर्शित हो रही है ।

प्रश्न ७—जायसी के रहस्यवाद की विशेषताओं को बताइये ।

प्रश्न ८—सिद्ध कीजिए कि जायसी के रहस्यवाद में ‘सर्व खलिवंद ब्रह्म की’ प्रतिष्ठा है ।

उत्तर—अज्ञात के प्रति जिज्ञासु रहना मानव की विशेषता है । उसने सृष्टि के नाना व्यापारों में एक चेतना सत्ता को आभास पाया । ब्रह्म के जिज्ञासु महर्षियों ने आनंद स्वरूप सत्ता का प्रतिपादन अद्वैतवाद के रूप में सबसे पहले उपनिषदों में किया है । किंतु अद्वैतवाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धांत है । वह ज्ञान का विषय है । उसमें कवि-कल्पना पर भावना को स्थान नहीं । जब उसका आकार लेकर कवि—कल्पना पर भावना उठ खड़ी होती है तब भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि होती है । अतः चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही भाव के क्षेत्र में रहस्यवाद है । रहस्यवाद भावात्मक और साधनात्मक दो प्रकार का होता है । आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता को लेकर भाव प्रकाशन से ‘सर्व खलिवंद ब्रह्म’ की प्रतिष्ठा होती है ।

जायसी ने ‘पद्मावत’ में सर्ववाद की प्रतिष्ठा की है । उनका रहस्यवाद भावात्मक है । प्रवृत्ति के कण-कण में वे ब्रह्म की सत्ता का अवलोकन करते हैं । जायसी की पद्मावती ईश्वर का प्रतीक है । उसकी बरणी के वाणों से समस्त संसार बिधा हुआ दिखाई देता है । प्रतीक है । उसकी

‘बरनी’ प्रेम के बाण हैं। जिनसे समस्त सृष्टि विद्ध हो रही है—

‘बरनी का का बरनी इमि बनी। सावे बान जानु दुइ अनी ॥

जुरी राम रावन की सेना। बीच समुद्र भये दुइ नैना ॥

उन बानन्ह असको जो न मारा। वेधि रहा सिगरी संसारा ॥

गगन नखत जो जाँहि न गनै। वे सब बान ओहि के हने ॥

रौव-रौव मानुस तन ठाढ़े। सूतहिंसत बेध असगाढ़े ॥

इस प्रकार परमात्मा का प्रेम सारी सृष्टि में छा रहा है। प्रत्येक जड़ चेतन में उसी का प्रकाश है। उसके प्रेम-बाण से घायल हो जाने पर साधक को कैसी मार्मिक स्थिति हो जाती है। यह पद्मावती (ईश्वर) का ही नाम रटता है। उसके मुँह से दूसरा शब्द निकलता तक नहीं—

‘दिस्टवान तस मारेहु, घायल पर तेहि ठाँव।

दूसरि बात न बोलहि, लेह पद्मावत नाऊँ।’

यह कोई साधारण प्रेम नहीं है। यह तो अजय प्रियतम का महा-वियोग है। अतः विरही के रक्त के आँसूओं की लालिमा से सूरज, मजीठ, टेसू, वनस्पति, योगी-यती, पत्नी, गगन आदि सभी लालिमा मय हो उठे हैं। यह जायसी जैसे प्रेम-विभोर के संत की ही भावुकता है जिसने प्रकृति के नाना रूपों में प्रियतम के वियोग की लालिमा के दर्शन किए—

‘सूरज बूढ़ि उठा हुई राता। और मजीठ टेसु बन राता ॥

×

×

×

×

भूमि जो भीजि भएउ सब गेह। अरु राते सब पखि पखेरु ॥

प्रियतम में अपने प्रेम बाणों से ऐसा विद्ध कर दिया कि प्रकृति उससे मिलने यो लालायित हो उठी है। इस व्यापक लालसा के द्वारा जायसी ने ब्रह्म-जीव और प्रकृति को एकता की ओर संकेत किया है—

‘धरती सरग मिले हुत दोऊ। केह निनार के कोन्ह विछोऊ ॥’

सभी सौर-मंडल तो वियोग में दग्ध हो रहा है। पवन, अग्नि, धूम और जल चक्कर काटकर प्रियतम के ‘अमरधाम’ तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील है। साधना की अपूर्णता के कारण ही वे पृथक हो गए हैं। तुलसी ने ‘विनय पत्रिका’ में ‘विछुड़े रवि’ ससि इन नैनन ते पावत दुखः

धरेरो।' कह कर ऐसा ही संकेत किया है। जायसी का कथन देखिए—

‘धाइ जो बाजा कै मन साधा । चक्र मारा भयउ दुइ आधा ॥

चाँद सुरज और नखत तराई । तेहि डर अंतरिख धिरै सबाई ॥

किन्तु इस भ्रमण और साधना के पश्चात् साधक साध्य को प्राप्त ही कर लेता है। प्रियतम का सामिप्य पाते ही समस्त अंधकार दूर हो जाता है। हृदय का उल्लास पुरइन बनकर छा जाता है। मानसदे समुद्र में पहुँचते ही रतनसेन और साधक योगियों के उल्लास का वर्णन जायसी ने निम्न प्रकार किया है।

‘देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइन हूइ छावा ।

गा अंधियार रैन-मसि छूटी । भाभिनसार किरिन गवि फूटी ॥

कंवल बिगस असि बिगसी देही । भवर दसन हुइकै रस लेही ।

जायसी की पद्मावती ‘अनन्त सौन्दर्य’ की प्रतीक है। इसलिए उसके सौजन्य, वर्णन में लोकीत्तर सौंदर्य की भाँकी दीखने लगती है। अतः खसके सघनश्याम-घटा रूपी केशों से स्वर्ग और पाताल में अंधकार हो जाना असम्भव नहीं है—

“सरवर तीर पद्मिनी जाई ।

खोपा छोरि केस मुकलाई ॥

ओनई घटा परी जग छाहाँ ।

ससि के सरन लीन्ह जानु राहाँ ॥

बेनी छोरि भार जो बारा ।

सरग पतार होइ अंधियारा ॥”

उस परम-शक्ति की सौंदर्य कला से समस्त संसार मथित सा हो रहा है। जायसी की पद्मावती भी जब अपनी पुतली फिराती है तब संसार डोलने लगता है। समुद्र उमड़कर आकाश को डुबोने लगता है।

‘जग डोलै डोलत नैनाहाँ ।

उलटि पड़ार जाहि पल माहाँ ।

पवन भकोरहि देहि हिलोरा ।

सरग लाइ भुईं लाइ बहोरा ॥

खए—

॥

॥

मास ही

जाता

मुद्र में

जायसी

।

॥

।

उसके

। अतः

गार हो

निम्न पंक्तियों में जायसी की रहस्य भावना मुखरित हो उठी है। उस अज्ञत सौंदर्य की प्रतीत पद्मावती के हास्य से कुमुद खिल उठती हैं और सरोवर के कमल, नीर, हंस तथा नग, हीरे आदि उसके नेत्र, शरीर, हास्य और दशनों की दर्पण छाया मात्र बनकर सरोवर को आरसी बना देते हैं—

‘विगसा कुमुद देखि ससि रेखा ।

भइ तँह ओप जहाँ जहाँ जो देखा ॥

पावा रूप, रूप जस चहा ।

ससि मुख सहुँ दरपन होइ रहा ॥

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर ।

हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ॥’

जायसी ने कहीं-कहीं पर वेदान्तियों के प्रतिबिम्बवाद तथा हठयोग और साधनात्मक के भी संकेत मिलते हैं। सिंहल गढ़ वर्णन में साधनात्मक रहस्यवाद है। किन्तु जायसी की ख्याति का मुख्य कारण उनका भावात्मक अद्वैतीवाद रहस्यवाद है।

आवश्यक स्थलों की

व्याख्याएँ

पुनि आये सिंहल.....वरनों घेर ।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग में जायसी सिंहलगढ़ का काव्यात्मक वर्णन करते हुए आध्यात्मिक संकेत दे रहे हैं—

केन्द्रीय भाव—सिंहलगढ़ अत्यन्त विशाल है। उसकी ऊँचाई पर चढ़ना बहुत कठिन है। कठिन साधना के द्वारा ही वहाँ तक पहुँच हो सकता है।

व्याख्या—सिंहलगढ़ अपनी ऊँचाई में आकाश को छू रहा है। उसकी निचाई वासुकि की पीठ तक पहुँची हुई है तथा उसकी ऊँचाई स्वर्ग तक है। उसके चारों ओर अत्यन्त गहरी खाई हैं। उसमें भाँकने

हो रहा

संसार

घरेरो।' कह कर ऐसा ही संकेत किया है। जायसी का कथन देखिए—

‘धाइ जो बाजा कै मन साधा । चक्र मारा भयउ दुइ आधा ॥

चाँद सुरज और नखत तराई । तेहि डर अंतरिख धिरै सबाई ॥

किन्तु इस भ्रमण और साधना के पश्चात् साधक साध्य को प्राप्त हो कर लेता है। प्रियतम का सामिप्य पाते ही समस्त अंधकार दूर हो जाता है। हृदय का उलास पुरइन बनकर छा जाता है। मानसरे समुद्र में पहुँचते ही रतनसेन और साधक योगियों के उल्लास का वर्णन जायसी ने निम्न प्रकार किया है।

‘देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइन हुइ छावा ।

गा अंधियार रैन-मसि छूटी । भाभिनसार किरिन गवि फूटी ॥

कंवल बिगस असि बिगसी देही । भवर दसन हुइकै रस लेही ।

जायसी की पद्मावती ‘अनन्त सौन्दर्य’ की प्रतीक है। इसलिए उसके सौजन्य, वर्णन में लोकोत्तर सौंदर्य की भाँकी दीखने लगती है। अतः स्वसके सघनश्याम-घटा रूपी केशों से स्वर्ग और पाताल में अंधकार हो जाना असम्भव नहीं है—

“सरवर तीर पद्मिनी जाई ।

खोपा छोरि केस मुकलाई ॥

ओनई घटा परी जग छाहाँ ।

ससि के सरन लीन्ह जानुराहाँ ॥

बेनी छोरि झार जो बारा ।

सरग पतार होइ अंधियारा ॥”

उस परम-शक्ति की सौंदर्य कला से समस्त संसार मथित सा हो रहा है। जायसी की पद्मावती भी जब अपनी पुतली फिराती है तब संसार डोलने लगता है। समुद्र उमड़कर आकाश को डुबोने लगता है।

‘जग डोलै डोलत नैनाहाँ ।

उलटि पड़ार जाहि पल माहाँ ।

पवन झकोरहि देहि हिलोरा ।

सरग लाइ भुईं लाइ बहोरा ॥

खण—

॥

॥

मास ही

जाता

मुद्र में

जायसी

।

॥

।

उसके

अतः

गार हो

निम्न पंक्तियों में जायसी की रहस्य भावना मुखरित हो उठी है। उस अन्नत सौंदर्य की प्रतीत पद्मावती के हास्य से कुमुद खिल उठती हैं और सरोवर के कमल, नीर, हंस तथा नग, हीरे आदि उसके नेत्र, शरीर, हास्य और दशनों की दर्पण छाया मात्र बनकर सरोवर को आरसी बना देते हैं—

‘विगसा कुमुद देखि ससि रेखा ।

भइ तँह ओप जहाँ जहाँ जो देखा ॥

पावा रूप, रूप जस चहा ।

ससि मुख सहुँ दरपन होइ रहा ॥

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर ।

हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ॥’

जायसी ने कहीं-कहीं पर वेदान्तियों के प्रतिबिम्बवाद तथा हठयोग और साधनात्मक के भी संकेत मिलते हैं। सिंहल गढ़ वर्णन में साधनात्मक रहस्यवाद है। किन्तु जायसी की ख्याति का मुख्य कारण उनका भावात्मक अद्वैतीवाद रहस्यवाद है।

आवश्यक स्थलों की

व्याख्याएँ

पुनि आये सिंहल.....बरनों घेर ।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग में जायसी सिंहलगढ़ का काव्यात्मक वर्णन करते हुए आध्यात्मिक संकेत दे रहे हैं—

केन्द्रीय भाव—सिंहलगढ़ अत्यन्त विशाल है। उसकी ऊँचाई पर चढ़ना बहुत कठिन है। कठिन साधना के द्वारा ही वहाँ तक पहुँच हो सकता है।

व्याख्या—सिंहलगढ़ अपनी ऊँचाई में आकाश को छू रहा है। उसकी निचाई वासुकि की पीठ तक पहुँची हुई है तथा उसकी ऊँचाई स्वर्ग तक है। उसके चारों ओर अत्यन्त गहरी खाई है। उसमें भाँकने

हो रहा

संसार

का भी साहस नहीं होता । उसमें भाँकते हुए ज-ँए काँपने लगती है । गढ़ के चारों ओर की खदके भाव की पहुँच से परै है, देखने से उसके तल को कुछ भी दिखाई नहीं देता । उसमें गिरने वालों सप्त पाताल को पहुँच जाता है । उसमें अत्यन्त दृढ़ नौ पौरियाँ नौ खंड है । उन नवों को चढ़ कर पार करने वाला व्यक्ति ही उस गढ़ के ऊपर तक पहुँच सकता है । गढ़ के चारों ओर स्वर्ण की परिधि है जिसमें नग और हीरे उड़े हुए हैं । वह ऐसी प्रतीत होती है मानो तारागणों से विजली दिखाई दे रही हो ।

सिंहलगढ़ लंका गढ़ से भी बड़ कर ऊँचा है । उसको देखते हुए मन और दृष्टि थक जाती है । मन उसके रहस्य को समझ नहीं पाता और दृष्टि ऊँचाई को देखती हुई थक जाती है ।

इस प्रकार सिंहलगढ़ सुमेरु पर्वत की तरह खड़ा हुआ है । उसके सामने दृष्टि भी नहीं ठहरती और उसकी ऊँचाई हृदय में नहीं समाती उसकी ऊँचाई किसी प्रकार भी वर्णन की जा सकती ।

विशेष १—नव पौरी..... वरम्हाडा में जायसी का साधनात्मक रहस्यवाद है । जायसी पर नाथ पंथी योगियों की साधना दृष्टि प्रभाव पड़ा ।

२—जायसी ने सिंहलगढ़ और लंका में अन्तर किया है—“लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका ।”

काव्य-सौन्दर्य—

अलंकार—ऊँचाई में सकाश छुने की संभावना होने के उत्प्रेक्षा, जाँघ जाइ में छेकानुप्रास, अगम आरम्भ में छेकानुप्रास । कंचन कोट में छेकानुप्रास, कंचन-कोटि में नग-सीसा जड़े की कल्पना, नखतन भरी विज्र में करने की कारण उत्प्रेक्षा, ऊँचाई में सुमेरु की संभावना करने उत्प्रेक्षा तथा समस्त पंक्तियों में अतिशयोक्ति अलंकार है ।

निति गढ़.....उतरै पार ।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी सिंहलगढ़ कि ऊँचाई का वर्णन कर रहे हैं ।

है।

उसके

को

को

कता

हीरे

खाई

मन

और

उसके

माती

आत्मक

प्रभाव

लका

प्रस्ता,

कोट

भरी

करने

वर्णन

अथाख्या--सिंहल गढ़ की ऊँचाई इतनी अधिक है कि सूर्य और चंद्रमा को भी बचकर चलना पड़ता है। नहीं तो किले से उलझ कर उनका रथ और उसके घोड़े नष्ट हो जायँ। गढ़ की नवीं पौरियाँ बज्र की बनी-बनी हुई हैं। जिनमें से प्रत्येक पर सहस्र-सहस्र सिपाही बैठे हुए हैं। गढ़ की रक्षा के लिये सदैव पाँच कोतवाल घूमते हैं। इतने दृढ़ प्रबन्ध के कारण उसकी पौली तक में कोई प्रवेश नहीं कर पाता प्रत्येक पौरी में सिंह गढ़े हुए हैं। उनको खड़े देखकर लोग भयभीत हो जाते हैं। गढ़ के द्वार पर बहुत सँवार कर नाहर गढ़े गये हैं। वे गजरते हुए मानो सिर पर चढ़ना चाहते हैं। वे पूँछ को हिलाकर जिह्वा पसार रहे हैं। उनको देखकर हाथी भयभीत हो रहे हैं कि कहीं वे गरज का आक्रमण न कर दें। गढ़ में नीचे से लेकर ऊपर तक सोने की शिलाओं को गढ़कर सीढ़ियाँ बनाई हैं वे चमकती हुए अत्यन्त ही सुन्दर लगती हैं।

गढ़ के नौ खड और नवीं पौरियों में बज्र के किबाड लगे हुए हैं। उस पर कोई व्यक्ति सरलता से नहीं चढ़ सकता उसकी चढ़ाई पार करने में चार बसेरे लेने पड़ते हैं।

विशेष—गढ़ के वर्णन में जायसी ने आध्यात्मिक संकेत किया है, पाँच कोतवाल—काम क्रोध, मोह, लोभ आदि हैं जो साधक को आगे बढ़ने नहीं देते। सूफी साधना के अनुसार चार बसेरे निम्न लिखित हैं—

१—शरीयत (कमकाण्ड)

२—तरीयत (उपासना काण्ड)

३—इकीकत (ज्ञान काण्ड)

४—मारफत (सिद्धावस्था)

अलंकार—प्रस्तुत से अप्रस्तुत का संकेत होने से समासोक्ति, बाजिरथ चरू में अतिशयोक्ति; जन गाजहि में उत्प्रेक्षा।

नव पौरी—गा बीति।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग में जायसी सिंहल गढ़ का वर्णन करते हुए आध्यात्मिक संकेत कर रहे हैं।

व्याख्या—गढ़ में नौ पौरियों के ऊपर दसवाँ गुप्त द्वारा है जिस पर सदैव ही घंटा बजता है। घंटा बजाने वाला वहीं बैठकइ अपनी-अपनी बारी से घड़ियाँ गिनता रहता है। जब घड़ियाँ पूरी हो जाती है तब वह घंटा बजा देता है। इसी प्रकार से संसार में मनुष्य के ऊपर काल का दंडा पड़ता है। हे मनुष्य ! फिर तुम क्यों निश्चित होकर बैठे हुए हो। तुम मिट्टी के बने हुए हो। तुम में किंचित भी स्थायित्व नहीं है। तुम उस समय के चाक पर चढ़े हो जो कभी भी स्थिर नहीं रहा। तुम्हारे जीवन में भी स्थिरता नहीं है। जो जो घड़ी आगे बढ़ती है उतनी तुम्हारे जीवन की आयु भी घटती जा रही है। अर्थात् जितनी ही आयु बढ़ती है उतनी ही दूसरी ओर उसकी आयु में ने कम भी होती है। मनुष्य ! तुम इस संसार के मार्ग के पथिक हो। तुम बेफिक्र होकर क्यों सो रहे हो। पहर-पहर में जिस प्रकार घंटा बजता है उसी प्रकार से क्षण-क्षण में काल तुमको सचेत कर रहा है किन्तु फिर भी तुम्हारे हृदय में ज्ञान का उदय नहीं होता।

यह जीवन रँहट पर चढ़े हुए घड़े के समान है यदि एक घड़ी में घड़ा जल से भर जाता है तो दूसरी के रिक्त हो जाता है। इसी प्रकार से मानव-जीवन जो एक क्षण में अस्तित्व में है दूसरे क्षण में ही विनष्ट हो जाता है।

अलंकार—समासोक्ति, अनुप्रास तथा रूपक।

सरबर तीर.....लहरहिं देख।

प्रसंग—कवि मानसरोवर में स्नान को प्रस्तुत पद्मिनी के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन कर रहा है।

केन्द्रीय-भाव—पद्मावती का सौंदर्य अनन्त है। उसके घने केशों की कालिमा से संसार में घटाये छा गई हैं। उसके मुख-चंद्र के प्रकाश से दिन ही में रात्रि की दशा हो रही है। उसके सौंदर्य में जायसी अनन्त सौंदर्य की भाँकी दिखा रहे हैं।

व्याख्या—सरोवर के तट पर पद्मावती पहुँच गई। उसने जूरे की खाल कर केशों को बिखेरा। केश उसके मुख-मंडल को घेर कर शरीर

पर कैल गये । ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके चंद्रमुख और मलयगिरि को सुगन्धि से युक्त शरीर को नागों ने चारों ओर से घेर कर भाँप लिया हो । उन सघन केशों की श्यामता से बादलों की घटा सी उठ खड़ी हुई । उसकी छाया संसार में अन्धकार का प्रसार करने लगी । मुख पर लोटते हुए केश ऐसे प्रतीत होते थे मानों चंद्रमा की शरण में राहु आ गया हो ।

पद्मावती के सघन केशों की श्यामता से सूर्य छिप गया । दिवस में रात्रि का दृश्य उपस्थित हो गये । पद्मावती सखियों सहित ऐसी लग रही थी मानों नक्षत्रों सहित चंद्रमा उदित हो गया हो । श्याम केशों के बीच में पद्मावती के चंद्रमुख को देखकर चकोर भी भ्रम में पड़ गया वह टक-टकी लगाकर देखने लगा ।

इस समय पद्मावती के दाँत बिजली के समान चमक रहे थे और मधुर वैन कोयल की काकली से प्रतीत होते थे । उसकी भौहें इन्द्र धनुष के समान लग रही थी । दो नेत्र रूपी खं न कीड़ा कर रहे थे तथा कुच रूपी नारंगियों का भौरे रस-पान कर रहे थे ।

सरोवर पद्मावती के सौंदर्य को देखकर मोहित हो गया वह हृदय में हिलोरें लेकर अभिलाषा करने लगा कि मैं पद्मावती के चरणों का स्पर्श कर सकूँ । इसलिए वह लहरें उठाने लगा ।

विशेष—पद्मावती के वर्णन में यहाँ जायसी ने अनन्त सौंदर्य की भाँकी उपस्थित की है । सरोवर एक साधक है । उसका आराध्य आज उसके समीप आ गया है । इसलिये उसकी प्रसन्नता का क्या कहना है ।

काव्य-सौन्दर्य

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा, कैतवापनुति तथा प्रस्तुत से अप्रस्तुत का सकेत होने से समासोक्ति है ।

धरी तीर.....जल माँह ।

व्याख्या—सभी सुन्दरियों अपनी कंचुकि (चोली), और सारी उतार कर तट पर रख दी और जल में प्रविष्ट हुई । पानी में घुस कर वे सभी कीड़ाएँ करने लगीं और उनके आँसू मोती में भूमि पर गिरने लगे ।

तब सखियों ने उससे कहा कि हे सखी तू बावली न हो ऐसा कौन है कि जिसको वहाँ हानि न हुई हो। किन्तु जिसका हार खो जाता है वह तेरी तरह इसी प्रकार रोता है। अतः प्रयत्न करके जो हार खो गया है, उसको खोज लो।

सभी सखियाँ गीता लगा लगाकर सरोवर में हार खोजने लगीं। किसी के हाथ में तो मोती आये और किसी के हाथ में धौंधा मात्र ही।

विशेष—इन पंक्तियों में जायसी ने श्राध्यात्मिक संकेत किया गया है। मनुष्य अचेत होकर अपने उद्देश्य को भूल कर साधना से विरत होता है। किन्तु जब उसकी अपनी भूल का ज्ञान हो जाता है तब वह रोता है।

अलंकार—नैन में सीप का आरोप होने से रूपक, आँसू में मोती गिरने की कल्पना होने से उपमेया 'कौन पानि में कुका बक्रोक्ति'।

कहा मानसर" नग हीर।

प्रसंग—पद्मावती को पाकर सरोवर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। पद्मावती के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य से सरोवर सुन्दर सृष्टि की रचना हो गई। प्रस्तुत प्रसंग में जायसी इसी तथ्य को पल्लवित कर रहे हैं।

व्याख्या—मान सरोवर कहने लगा की आज मेरी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण हो गई, जो पद्मावती यहाँ पारसरूप होकर आ गई। उसके पैरों का स्पर्श करते ही मैं निर्मल हो गया हूँ। तथा उसके सौन्दर्य का अवलोकन करके मुझे भी सौन्दर्य की प्राप्ति हो गई है। उसके सुगन्धित शरीर के स्पर्श से मेरे भी मलय सुगन्धि आ गई। मेरी तपन दूर हो गई और हृदय शीतल हो गया। न जाने किस पुण्य से आज पद्मावती यहाँ स्वयं आ गई है। उसके आगमन से मेरे समस्त पाप दूर हो गये और पुण्य का उदय हो गया।

उसी समय खोया हुआ हार उतरा कर ऊपर आ गया। उसे सखियों ने ले लिया और पद्मनी प्रसन्न हो गई। पद्मावती को चन्द्रमा सी मुस्कान देखकर कुपुद खिल गया। जहाँ जहाँ पर पद्मावती की दृष्टि पड़ी, वहीं वहीं पर आभा आ गई। इस समय पद्मावती का मुख दर्पण हो रहा था। उसमें देखकर प्रत्येक को मन चाहा रूप मिल रहा था।

न है कि
वह तेरी
गया है,

लगी।
प्राप्त हो।
गया है।
त होता
तोता है।
न मोती

हा है।
रचना
है।

त अभि-
। उसके
दय का
सुगन्धित
हो गई
नी यहाँ
पे और

सखियों
सी मुस-
ट पड़ी,
हो रहा

पद्मावती के नेत्र के सौन्दर्य को देखकर कमलों की सृष्टि हो गई, शरीर की निर्मलता से सरोवर का जल निर्मल हो गया, हँसी को देखकर हंस की सृष्टि हो गई तथा दाँतों की आभा से नग और हीरे हो गये।

विशेष १—पद्मावती सरोवर के तट पर खड़ी है। उसके शरीर का प्रतिबिम्ब सरोवर में पड़ रहा है। इसलिए नेत्र के प्रतिबिम्ब से सरोवर से कमल, शरीर की कान्ति से निर्मलता, हंसने से हंस और दाँत से हीरे तथा नग हो रहे हैं।

२—पद्मावती के रूप में अनन्त सौंदर्य का आभास देने के कारण सुन्दर भावात्मक भारतीय प्रतिबिम्बवाद। रहस्यवाद है।

अलंकार—पारस रूप में रूपक, चन्द्र उपमान से उपमेय पद्मावती का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति, ससि—रहा में उत्प्रेक्षा, तथा दोहे में तद्गुण अलंकार है।

गढ़ तस.....दूसरा कोई।

शब्दार्थ—बाँक = टेढ़ा। बाट = रास्ता। मरजिया = गोताखोर।

मोचु = मृत्तु।

प्रसंग—शिवजी रत्न सेन को सिंहलगढ़ में प्रवेश की विधि बताते हुए ढंग की समता शरीर से कर रहे हैं।

व्याख्या—जैसा तेरा शरीर अद्भुत है उसी प्रकार का गढ़ भी है। पुरुष को उसकी छायामात्र ही समझो। लड़ाई लड़ करके या हठ करके वह नहीं पाया जा सकता है। जिसने उसको प्राप्त किया उसने पहले अपने आपको पहचान लिया है। उस गढ़ के बीच में नौ छौदियौं हैं और वहाँ पाँच कोतवाल घूमा करते हैं। उसका एक छिपा हुआ दरवाजा भी है जिसका चढ़ाव दुर्गम है, रास्ता बहुत टेढ़ा है। कोई विरला व्यक्ति ही उस बाटो का मर्म पाकर वहाँ पहुँच सकता है। जिसको इस भेद का पता चल गया वह चींटों बनकर चढ़ जाता है। गढ़ के नीचे एक कुँड है उसमें एक सुरंग है वही से मार्ग जाता है। यह मैं तुझसे कहता हूँ। जैसे चोर सम्हाल कर सेंध लगाकर प्रवेश करता है, अथवा जै जूआ खेलने वाला जुये में दांव देखकर खेलता है, अथवा

हुवकी लगानेवाला समुद्र में प्रवेश करता है और तब उसको सीप प्राप्त होती है इसी प्रकार जो इस लिये हुए स्वर्ग के दसवें दरवाजे ढूँढ़ लेता है वही सहल द्वीप में चढ़ सकता है ।

दसवाँ दरवाजा ताड़ वृक्ष के समान ऊँचा है जो आँखों को उलटकर देखेगा वह उसको देख सकता है वहाँ अपने श्वास और मन बांधकर वहाँ पहुँचता है । जैसे कृष्ण ने यमुना में प्रवेश करके (काली नाग) को पकड़ लिया था तू भी अपनी साँस को मारकर मन को बश में कर । यदि तू मर जावेगा तो तेरे आपे अहंकार का नाश हो जावेगा । प्रकट रूप से तू लोकाचार की बातें कह परन्तु गुप्त रीति से अपने मन को उससे लगा जिससे तू अनुरक्त है । “मैं” “मैं” कहते हुये सबने अपनी बुद्धि को विगाढ़ दिया है । यदि तू इस “मैं” को नष्ट कर दे तो सब कुछ तुझे प्राप्त हो जावेगा । जब तक जीवन है तब तक मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति में जुट जाय और केवल एक बार ही मृत्यु को प्राप्त करे । फिर उसके लिये मृत्यु कोई चीज नहीं रहती और ना उसे कोई मार सकता है । इस प्रकार की उच्चावस्था में वह स्वयं ही गुरु हैं और स्वयं ही चेला हैं ।

वह स्वयं सब कुछ है और स्वयं अकेला भी है । वह स्वयं की मृत्यु है और स्वयं ही जीवन भी है । स्वयं ही तन और मन है । वह जो चाहे स्वयं करता है । वहाँ उससे भिन्न दूसरा है ही कौन ?

विशेष—उपरोक्त पंक्तियों में जायसी ने हठयोग की कतिपय बातों का उल्लेख किया है । जैसे इस शरीर रूपी गढ़ के नीचे नाभि रूपी कुण्ड है । उसी के नीचे कुण्डलनी चक्र है । उसी प्रकार शरीर के मेरुदण्ड में आठ चक्र हैं और नौ दरवाजे हैं दसवाँ दरवाजा ‘ब्रह्मरंध्र’ कहलाता है । कहते हैं इसी ‘ब्रह्मरंध्र’ के द्वारा योगीजन अपनी आत्मा को शरीर से निकाल ले जाते हैं । यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ७ वें मंत्र में दसवें दोहे का भाव बड़े ही स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है । जहाँ पर कहा गया है कि :—

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ,
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।

अर्थात् इस उन्नावस्था की प्राप्ति में सब कुछ आत्मा ही आत्मा दिखाई देता है—न वहाँ मोह रहता है न शोक—सर्वत्र एकत्व ही एकत्व दृष्टि में आता है। यही अद्वैतवाद की पराकाष्ठा है।

अलंकार—उपमा, छेकानुप्रास, दृष्टान्त तथा समासोक्ति।

सूरदास

प्रश्नोत्तर—

प्रश्न १—भाव-पद् और कला-पद् को दृष्टि में रखते हुए सूर के काव्य की विशेषताएँ बताइये।

अथवा

प्रश्न—सूर के काव्य में रस-योजना (भाव-पद्) पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

अथवा

प्रश्न—सूर के काव्य की विशेषताओं का कला-पद् (भाषा, शैली, छन्द, अलंकार) की दृष्टि से सम्यक् विवेचन कीजिए।

उत्तर—कवि भाव-जगत का प्राणी होता है। उसकी कल्पना-खगी उन्मुक्त आकाश में उड़कर काव्य-उपकरणों का चयन करती है। उन्हीं उपकरणों से उत्पन्न अनुभूति की अभिव्यक्ति वह कला-पद् के माध्यम से करता है। यदि उसकी भाषा और शैली पर सफल अधिक है तो उसकी अनुभूति अभिव्यक्त होकर अत्यन्त मार्मिक प्रभाव डालती है। अतः स्पष्ट है कि काव्य के प्रमुख दो पद् हैं—

१—भाव-पद्

२—कला-पद्

दोनों पदों के सफल समन्वय से ही कवि की काव्य-कला मानव हृदय को प्रभावित करने में सफल हो सकती है और पाठक या श्रोता के हृदय में ब्रह्मानन्द सहोदर (काव्य-रस) की निष्पत्ति कर सकती है। महाकवि सूर की काव्य-धारा इसी प्रकार की पावन गंगा है, जिसमें अबगाहन

करके पाठक आनन्द-निमग्न हो जाता है। सूर के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सफल समन्वय है—

भाव-पक्ष

सूर सागर का प्रत्येक पद रस-लहरी प्रवाहित करने में समर्थ है। किसी भी पद को सुनकर पाठक भाव-विभोर हुए बिना नहीं रह सकता है। उनके पदों के लिए कहा गया है—

किधौँ सूर को सर लग्यो,
किधौँ सूर की पीर ।
किधौँ सूर को पद लग्यो,
तन मन धुनत शरीर ।

सूर ब्रज-भाषा के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं वे साहित्य में नवीन परम्परा के जन्म दाता हैं। सूर का काव्य पद-साहित्य में है। पद-साहित्य की परम्परा विद्यापति से लेकर जयदेव तक चली जाती है। सूर ने परवर्ती काव्य की विशेषताओं को ग्रहण करने के साथ ही साथ अपनी प्रतिभा से मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। वे श्याम सुधा पीकर नशे में चूर हो चुके थे—

श्याम तुम्हारा तुम थे श्यामल,
श्याम लता में आत्मा उज्ज्वल ।
श्याम सुधा तुम पीकर अविचल,
रहे नशे में चूर ॥

उन्होंने अपने काव्य को कृष्ण भय कर दिया। सूर के पदों को पढ़ते ही बाल गोपाल यशोदा कभी अजिर विहारी बनकर सामने आ जाते हैं, कभी माखन चुरा कर भागते हुए दिखाई पड़ते हैं, कभी ग्वालिनी को मार्ग में रोक कर छेड़खानी करते दिखाई देते हैं, और कभी दिखाई पड़ते हैं, प्राणप्रिय ब्रज वत्सलियों और प्रेममयी राधा के साथ रास-लीला और प्रेम-क्रीड़ाएँ करते हुए। सूर का काव्य पढ़ते हुए कृष्ण की बाल-लीलाएँ और यौवन-लीलाएँ साकार हो उठती हैं। परम्परा से

पद् और

चला आने वाले कृष्ण-काव्य को सूर से नवीन उद्भावनाएँ और नवीन प्रेरणाएँ मिलीं ।

प्रसर्थ है ।

ह सकता

वात्सल्य रस के तो सूर सम्राट ही है । इस क्षेत्र का वे कोना-कोना भाँक आये हैं । वात्सल्य—वर्णन में संसार के किसी देश का साहित्य सूर की समता नहीं कर सकता । सूर के पदों के पढ़ते ही “यसुदा अजिर-विहारी” श्याम पाठक और श्रोता के नेत्रों के समक्ष विहार करने लगते हैं । सूर को बाल-लीला वर्णन का प्रत्येक चित्र अनूठा है—मुख में आँगूठा रखकर किलकारी भरना । माटी खाना, आँगन में लोटना, अपने प्रतिविम्ब को मिट्टी खिलाना, माता की चोटी पकड़ना, चन्द्र खिलौना लेने का प्रस्ताव करना, माता से बलराम की शिकायत करना लेटी हुई श्वालिनी की चोटी पलँग से बाँध देना आदि सभी कुछ सुन्दर और अनूठा है । यशोदा द्वारा जल में चंद्र का प्रतिविम्ब दिखाकर बहलाने में कृष्ण के बाल-मनोबिज्ञान की भाँकी देखिए—

नवीन

है । पद-

जाती है ।

थ ही साथ

पुधा पीकर

आन बतावति आन दिखावति,
बालक तौ न पतीजै ।
खसि-खसि परत कान्ह कनियौ तै,
सुसकि सुसकि मन खीजै ।

बच्चे माता से हठ करते हुए किस प्रकार उलझ पड़ते हैं । इस का चित्र देखना होतो निम्न उदाहरण देखिए ।

दोऊ मैया मैया पै माँगत,
दैरो मैया माखन रोटी ।
बल जू गछो नासिका मोती,
कान्ह कुँवर गहि दृढ़ करि चीटी ॥

को पढ़ते

ने आ जाते

शालिनी की

भी दिखाई

साथ रास-

ए कृष्ण की

परम्परा से

सूर वात्सल्य और शृङ्गार के कवि है । उनका प्रणय वर्णन भी स्वाभाविक घटना है । उसमें लालसाओं का न हा हा कार मात्र है और और न माशूका की एक झलक पाकर मजन् बनने का ही आदर्श ही है । राधा और कृष्ण के प्रणय को विकास सहचार्य-भावना से कमिक रूप से होता है । बाला-पन सखा-सखी ही यौवन के साथ बन जाते हैं ।

“पीत वसन फरिया कटि पहिने बेनी पीठ झकझोरी” तथा नैन विशाल भाल दिले रोरी” राधिका के स्वरूप को देखते ही कृष्ण पर ‘ठगौरी’ पड़ जाती हैं। और वे “कौन तू गौरी प्रश्न” कर देते हैं। वे भोली राधा को बातों ही में भुला कर अपने घर आने का भी निमंत्रण दे देते हैं।

खेलन कबहूँ हमारे आबहु,
नन्द-सदन ब्रज गाऊँ ।
द्वारे आइ टेरि मोहि लीजौ,
कान्हू हमारो नाऊँ ॥

आगे चलकर कृष्ण-राधा का प्रणय विकसित होता जाता है। गोपियाँ भी कृष्ण की प्रेमकाएँ बन जाती हैं। माखन चोरी, दधि दान, वंशी-वादन, चौर-हरण रास-लीला आदि अनेकों खोपानों को पार करती हुई कृष्ण-राधा और गोपियों के प्रणय की धारा सूर के काव्य में प्रवाहित हुई है।

अभिन्न प्रणयनी राधा और गोपियों से विछुड़ कृष्ण चले जाते हैं। उनके हगों वर्षा आठौ याय आकर अपना निवास बना लेती हैं। सूर का विप्रलम्भ शृंगार अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। वियोग शृंगार की समस्त दशाएँ सूर के काव्य में हैं। कृष्ण के चले जाने पर सारथ और प्रातः तो उसी प्रकार होते हैं किन्तु “सदन गुपाल बिना या तन की सब बात बदली।” वियोग में स्मरण, चिन्ता और भूख्खी का निम्न पद कितना सफल उदाहरण। राधा कहती है—

मेरे मन इतनी सूल रही,
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नंदलाल कहीं ।
तिनहिं देखि मैं मान कियो सखि सो हरि गुप्त गही ॥
सोचति अति पछिताति राधिका मुच्छित धरीन दही ॥

मरण की दशा तो विरह में जल जल कर गोपियों न जाने कितनी बार प्राप्त कर चुकी हैं—

जब हरि गमन पूरब लौ ।
तब लिखि जोग पढायो ।

या नैन
ष्ण पर
देते हैं।
नी निम-

यह तन जरि कै भस्म है निवरयो ।

बहुरि मसान जगायो ॥

सूर का भ्रमर-गीत तो वियोग वारीश है। उस न जाने कितनी भाव राशि भरी हुई है। सम्बन्ध भावना से विरह अधिक उद्दीप्त हो जाता है। प्रिय की वस्तु देखकर विरह उद्दीप्त हो जाता है। श्याम सुन्दर का पत्र पाकर गोपियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के,

बारा-बार लखति छाती ॥

लोचन जब कागद मसिमिलि कै,

हुई गई श्याम श्याम की प्राती ॥

है ।
धे दान,
र करतो
प्रवादित
जाते हैं।
हैं । सूर

शृंगार
पेर साथ
बेना या
रूखा का

सूर का विहीर-स्थल जिस प्रकार घर की चहार-दीवारी में लेकर यमुना के हरे-भरे कधारों और वनस्पतियों तक फैला हुआ है उसी प्रकार से उनका विरह-वर्णन भी! बैरिन भई रतियाँ से लेकर प्रकृति के खुले आंगन तक व्यापक है। मानव जीवन के आदिम वन्य-जीवन के परंपरागत मधुर संस्कार को उद्दीप्त करने वाले निम्न कथन में कितना माधुर्य है—

“एक बन दूढ़ि सकल बन दूढ़ौ,

कतहुँ न श्याम लहौ ॥”

इस प्रकार क्या संयोग या शृंगार और क्या विप्रलंभ-शृंगार दोनों की दृष्टि से सूर एक सफल कवि है। उनके प्रणय की याह उद्धव जैसे ज्ञानी भी न पा सके।

ने कितनी

वात्सल्य और शृंगार के अतिरिक्त सूर के काव्य में हास्य, अद्भुत-बोरो, करुणा, भयानक, रौद्र और शांत रस की भी अभिव्यक्ति मिलती है। राधा की साड़ी ओढ़ कर शाने के प्रसंग को पढ़ कर पाठक मर्यादित हास्य का आनंद प्राप्त करता है—

पीत उढ़नियों कहाँ विसारी ।

तुम तौ लाल दिगन की ओढ़े ॥

हौ काहु की सारी ।

माखन-चोरी तथा कृष्ण और उनके सखाओं के प्रसंग में भी हास्य रस की भाँकी मिल जाती है ।

“कर पग गहि अँगुठ मुख मेलत” जैसे पदों में अद्भुत रस है । भीष्म-प्रतिज्ञा में भक्ति रस से परिपूर्ण वीर रस है ।

‘आजु हौ हरिहि न सस्त्र गहाऊँ’

तौ लाजौ गंगा जननी कौ, सोतनु सुतन बहाऊँ ॥

राधा के निम्न निम्नण में कृष्ण रस की पूर्ण सामग्री है ।

“अति मलीन वृषभानु कुमारी ।

हरि-सुभ-जल अंतर तनु भीजे ॥

तर लालच न धुआवत सारी ।

“भूहरात दावानाल आयौ” के प्रसंग में भयानक और व्रज को बड़ी देने के लिए इंद्र के कोप में रौद्र रस की सुंदर भाँकी मिल जाती है ।

सूर के काव्य में वात्सल्य और शृंगार के उपरांत शांत रस अत्यंत विस्तार से है । सूर के विनय के सभी पद शांत रस के ही अंतर्गत है !

सूर का प्रकृति-वर्णन—सूर के काव्य में प्रकृति को व्यापक रूप से स्थान मिले है । सूर काव्य के नायक कृष्ण की लीला भूमि प्रकृति के रमणीय रंग स्थली है । वे प्रकृति के महान् आँगन में घूमते हैं, कुंजों में विहार करते हैं, वियोग-वर्णन में सूर ने प्रकृति के उद्दीपन रूप में ही अपनाया है । कृष्ण के वियोग में वृन्दावन की हरीतिममा उनकी आँखों में आग सी लगा देती है । वे उसे को सतो हुई कहती हैं—

मधुवन तुम कत रहत हरे ।

विरह—वियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरं ॥

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर काव्य अनुभूति का भण्डार है । उन्होंने हृदय का कोई कोना शेष नहीं छोड़ा । उनके काव्यनुभूति के सागर में पाठक निमग्न हो जाता है ।

कला-पक्ष

भाव-पक्ष की तरह सूर का कला-पक्ष भी परि-पूर्ण है। क्योंकि सफल अभिव्यक्ति में ही अनुभूति प्रभावशीलिता होती है। कला पक्ष के अंतर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं—

१—अलंकार

२—भाषा

३—माधुर्य, ओज आदि गुण

४—छंद-विधान

(१) अलंकार—सूर ने यद्यपि अपनी रचना को अलंकारों के बोझ से दबाया नहीं है, परंतु उसमें अलंकारों की छुटा दर्शनीय है। उनके अलंकार सदैव ही भावों के स्पष्टीकरण में सहायक हुए हैं। शब्दालङ्कार और अर्थालंकार दोनों का सुन्दर प्रयोग किया और सार्थकता लाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, व्यक्तिरेक, प्रतीति, विभावना, वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमक अलंकारों का बड़े ही कौशल के साथ प्रयोग किया है। साङ्ग रूपक के लिखने में सूर को पर्याप्त सहायता मिली है। सूरदास जी केशवदास जी के समान चमत्कारवादी कवि नहीं थे, उनके अलंकार चमत्कार के लिए वरन् अभिव्यंजना शक्ति के साधन मात्र बनकर आये हैं। भाषा का स्वाभाविक लालित्य और माधुर्य उनकी कविताओं में मिलता है। साथ ही साथ उनकी भाषा में स्वाभाविक प्रवाह ही है। सभी अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करने से लेख का कलेवर अधिक बढ़ जावेगा, इसलिए कुछ उदाहरण देकर यहाँ पर स्पष्ट किया जावेगा। पहिले अनुप्रास की छुटा देखिये—

जागिये गोपाल लाल, आनदनिधि नंद लाल,

जसुमति कहे बार बार भोर भयौ प्यारे।

नैन कमल दल विसाल, प्रीति-वाटिका मराल,

मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे।

निम्नलिखित पद में एक-एक उपमा की सार्थकता पर विचार इष्ट है । कृष्ण जी अङ्ग-प्रत्यङ्ग से अनेक वस्तुओं की उपमा दी है और बताया है कि उनमें कितना गुण-साम्य है—

उपमा न्याय कही अंगन की ।

गये मधुपुरी क्यों फिर आवैं शोभा कोटि अनंगन की ॥

मोर मुकट सिर सुरधनु की कवि दूरहि तें दरसावैं ।

जो कोउ करै कोटि कैसेहु नेकहु छुवन न पावै ।

कनक-भ्रमर भ्रमि-भ्रमत सदा बन बहु वेलिरस चाखै ।

अलक-कोट-वासी लहिमत पै बंस बंस अपनो मन राखै ॥

कुण्डल मकर, नयन नीरजसे, नाक ना सुक कविकुल गावै ।

थिर न रहै, सकुचै निसि-बस है, पंजर रहि के बैन सुनावै ॥

कृष्ण और राधा का कैसा भव्य चित्र उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा खींचा गया है—

नटवर वेष काछे स्याम ।

पद-कमल नख इन्दु सोभा, ध्यान पूरन काम ॥

जानु जंघ सुघटनि करभा, नौहि रंभा तूल ।

पीत पट काछिनि मनहुँ, जलज केसर भूल ॥

कनक छिद्रावली सोभित, नाभि कटि के भीर ।

मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं हृद तीर ॥

भलक रोमावली सोभा बीच मोतिन हार ।

मनहुँ गंगा बीच जमुना, चली मिलि त्रय धार ॥

साङ्ग रूपक देखिये—

प्रभु हौं सब पतितन को राजा ।

पर निन्दा मुख परि रख्यो,

जग यह निसान नित बाजा ॥

मंत्री काम कुमति दैवे को,

कोध रहत प्रतिहारे ।

हृष्टव्य
वताया

रूपकातिशयोक्ति में कृष्ण जी की रूप माधुरी का कैसा सुन्दर वर्णन किया गया है—

नंदनंदन मुख देखौ माई ।

खंजन मीन कुरंग, भृगु, वारिज पर अति रुचि पाई ।

सुति कुण्डल विवि मकर सुविलसत भदन सहाई ॥

कठ कपोत, कीर विद्रम पर, दारिम-कनन चुनाई ।

दुइ सारंग बाहन पर मुरली, आइ देत दुहाई ॥

।
॥
के द्वारा

भाषा—सूरदास जी ने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सूर ने ब्रजभाषा को सबसे पहले साहित्यिक रूप प्रदाद किया है। उनकी भाषा में कोमलता और सजोवता मिलती है। कहीं-कहीं सूर ने अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग भी दिया है। परन्तु उनकी संख्या अत्यन्त अल्प है। सूर भक्त कवि और कथा गायक तीनों रूपों में हमारे सामने आते हैं और तीनों ही रूपों में भी हम उनकी भाषा को पाते हैं। माधुर्य और प्रसाद गुण आपकी कविताओं में पूर्ण रूप से मिलता है। मुहावरे और कहावतों का प्रयोग भी हमें उनकी रचनाओं में मिलता है। इन मुहावरों के कारण सूरदास जी की कविता में प्रवाह है और व्यंग की मधुर छटा है।

उनमें चित्रमयता भी पूर्ण रूपेण विद्यमान है, कृष्ण और राधा के सुन्दर चित्रों का निर्माण सूरदास जी की लेखनी से हुआ है इससे हम कवि की महानता का प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं। एक उदाहरण लीजिए—

कृष्ण—खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।

कटि कछुनी पीताम्बर ओढ़े,

हाथ लिए भौरा चक्र डोरी ॥

राधा—औचक ही देखी तहँ राधा,

नयन विशाल भाल दिये रोरी ।

नील वसन फरिया कट फहिरे,

वेनी पीठ रुचिर भ्रुकभोरी ।

हास्य और व्यंग्य की कैसी मधुर व्यजना सूर ने की है। कृष्ण राधा से पूछते हैं—

बृक्षत श्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहत, काको है तू बेटी ?
देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी ॥

राधा उत्तर देती है—

काहे को हम ब्रज तन आवत
खेलन रहस आपनी पौरी ।
सुनति रहत भवनन नँद ढोटा
करत रहत माखन दधि चोरी ॥

गो-दोहन का यह दृश्य भी तो बड़ा मनोरम है—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी ।
एक धार-दोहिन पहुँचावत,
एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी ।
मोहन कर ते धार चलत पय,
मोहनि मुख अति ही छवि बाढ़ी ॥

छन्द विधान—सूर ने गेय पदों में अपनी रचना की है। इसलिए उन्होंने पिंगल शास्त्रोक्त छन्दों का अधिक प्रयोग नहीं किया है। फिर भी बर्णनात्मक भाग में चौपाई, चौबोला, दोहा, सोरठा और रोला का प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर—काव्य में कला-पद्धति का भी पूर्ण निर्वाह है।

सूर के कला-पद्धति ने भाव-पद्धति को स्पष्ट करने में सहायता दी है।

प्रश्न ४—भ्रमरगीत के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए सूर के भ्रमरगीत की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

उत्तर—भ्रमरगीत का प्रसंग सूर ने भागवत् के दशम स्कन्ध से लिया है। कृष्ण चरित्र में यह प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है। इसके द्वारा सूर का उद्देश्य निर्गुण निदाकार का खंडन करके सगुण-सक्रिय का प्रतिपादन

करना था। भ्रमरगीत का मूल स्रोत भागवत् में है। कृष्ण-सखा उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर गोपियों के पास वृन्दावन में आए हैं। वे गोपियों को उपदेश देना आरम्भ करते हैं। उसी समय वहाँ पर एक भ्रमर कहीं से उड़कर आ जाता है। एक गोपी उससे कहने लगती है—

“हे धूर्त के बन्धु मधुकर तुम हमारे चरणों को न छुओ। तुम में सौत के कुच-मंडल में बिहार करने वाली माला में लित कुंकुम लगा हुआ है। मथुरापति कृष्ण ही इस प्रसाद को धारण करें, हम इस प्रसाद को नहीं चाहतीं। तुम्हारी और कृष्ण की बन्धुता ठीक ही है। क्योंकि जैसे तुम सुमनों का रस लेकर छोड़ जाते हो वैसे ही एक बार अधर-सुधा पिलाकर वह भी हमको छोड़कर चले गये।”

भागवत में उद्धव का उपदेश सुनकर गोपियों को ज्ञान की प्रति हो जाती है। वे उद्धव की पूजा करती हैं। भागवत के रानी प्रसंग को सूर ने भ्रमर-गीत में पल्लवित किया है। भागवत् के भ्रमरगीत में जहाँ ज्ञान का प्रतिपादन है वह सूर के भ्रमरगीत में भक्ति की प्रधानता है। सूरदास ने तीन भ्रमरगीत लिखे—

प्रथम भ्रमरगीत भागवत् का अनुवाद है। इसमें वैराग्य और ज्ञान का विस्तार से विवेचन है। सूर ने ज्ञान के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी है। यह भ्रमरगीत चौपाई छंद में है।

दूसरे और तीसरे भ्रमरगीत में पदों में लिखे गये हैं। भौरे के आगधन का कहीं वर्णन नहीं है। केवल मधुकर नाम से उपालम्भ दिया गया है।

सूर का तीसरा भ्रमरगीत वियोग का वर्णन है। वियोग की स्थिति में गोपियों के प्रेम की वास्तविकता का परिचय मिलता है। गोपियों को सान्त्वना देने के लिए उद्धव ज्ञान को उपदेश देते हुए कहते हैं :—

ताहि भजहु किन सवै सथानो ।

खोजत जाहि महा मुनि ज्ञानी ।

जाके परु रेख कछु नाहीं ।

।वन मूँदि चितवहु चित माहीं ॥

इसलिए
फिर भी
गोला का

भी पूर्ण

है।

सूर के

से लिखा

सूर का

तिपादन

गोपियों को उद्धव का योग और ज्ञान का उपदेश नहीं रुचता । वे अनेक उक्तियों से उसका खंडन करती हैं । वे सरलता से कह सकती हैं कि यदि उद्धव अपने ब्रह्म को मुकुट पीताम्बरधारी दिखा दें तो वे उसको अवश्य स्वीकार कर लेंगी—

तौ हम मानै बात तुम्हारी ।

अपनो ब्रह्म दिखावहु हमको मुकुट पिताम्बर धारी ॥

भ्रमरगीत सार में गोपियाँ भक्ति का पोषण करती हैं । वे भक्ति का प्रतीक हैं और उद्धव ज्ञान का । ज्ञान का पराभाव दिखाकर भक्ति का पक्ष प्रबल किया गया है । उद्धव के कथन का वे खंडन करती हैं । उद्धव ने बहुत कुछ अपनी स्थिति को स्पष्ट किया । वे सोचने लगी कि हो सकता है कि कुब्जा ने यह मन्त्र फूँक दिया हो—

मधुकर कान्ह कही नहिं होहीं ।

यह तो नई सखी सिखाई है, निज अनुराग बरोहीं ।

रचि राखी कूवरी पीठि पै, ये बातें चकचौहीं ॥

परन्तु जब उद्धव अपनी ही अपनी हाँके चले जाते हैं तो गोपियाँ कोधित हो जाती हैं । उनकी मानसिक अस्वस्थता को एक गोपी इस प्रकार प्रकट करती हैं—

ऊधो तुम अपनो जतन करौ ।

हित की कहत कुहित की लागै, कत वे काज ररौ ।

जाइ करौ उपचार आपनो हम जो कहत हैं जीकी ।

कछु कहत कछुए कहि डारत धुनि देखियत नहिं नीको ॥

वे उससे तज्ञ आकर यह कहती हैं कि हे बाबा यदि तुम से और कु और क नहीं आता तो तुम कृष्ण की कथा सुना दो और कृपा करके इस योग के संदेश को मथुरा में ही ले जाओ । वे उद्धव को समझाती हैं कि हम तो पहिले से ही योग को ग्रहण किये हुए हैं । प्रेमी रूपी योग का अग्रि में हमने अपनी समस्त इच्छाओं को नष्ट कर हम पञ्चाभि साधन कर रही हैं—

हम अलि गोकुल नाथ अराध्यौ ।

मन बच कम हरि सों धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तब साध्यौ ॥

माता पिता हित, प्रीत निगम पथ तजि दुख सुख भ्रम नाख्यौ ।

मान अपमान परम परितोषी अस्थिर थिर मन राख्यौ ॥

सकुचासन कुल सील करसि करि जगत बन्दि करि बन्दन ।

सूर के विवेचन में स्वाभाविकता है । गोपियों द्वारा सूर ने जो

कुछ कहलवाया है उसमें नारी सुलभ सारल्य के दर्शन होते हैं । कृत्रिमता की कहीं गंध भी नहीं प्रतीत होती ।

सूर का वाग्वैदग्ध्य भी उच्च कोटि का है । वे ऐसा सीधा परन्तु तीखा व्यंग्य-बाण छोड़ती हैं जिससे निरुत्तर हो जाते हैं वे कहती हैं । कि हमारे दस बीस मन नहीं है । एक मन था, वह कृष्ण जी ले गये । उनकी इस मीठी चाशानी का जरा मजा लीजिये—

ऊधो मन नार्हीं दस बीस ।

एक हुतो जो गयो श्याम संग को आराधैं ईस ॥

विनोद की मात्रा बढ़ाने के लिए व्यंग्य को कितनी मीठी चुटकी इस

पद में ली गई है—

देन आये ऊधो मत नीको ।

आवहु री सब सखी सयानी लेहू न जस को टीको ॥

तजन कहत अम्बर आभूषण गेह नेह सबही को ।

सीस जटा सब अंग भस्म अति मिलवत निगुन फोको ॥

मेरे जान यहै जुवतिन को देत फिरत दुख पीको ।

सूर के भ्रमरगीत की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें भाव पक्ष और कला पक्ष का सुन्दर समन्वय है । वियोग शृंगार की दृष्टि से सूर के इस योग के भ्रमरगीत सार का अभूतपूर्व स्थान है । काव्य शास्त्र के आचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार में वियोगी को दश दशाएँ मानी हैं—

(१) अभिलाषा, (२) चिंता, (३) स्मरण, (४) गुण-कथन, (५) उद्देग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता, (१०) मूर्च्छा ।

सूर में ये सभी अंतर्दशाएँ मिलती हैं। चिंता, गुण-कथन का यह पर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

चिंता—मधुकर ! ये नयना पै हारे ।

निरखि-निरखि मग कमल नयन को,
प्रेम मगन भये भारे ॥
ता दिन हैं नींदो पुनि नासो,
चौकि परत अधिकारे ॥
सदन, तुरी, जागत पुनि सोई,
जो है हृदय हमारे ॥

विप्रलम्भ का इतना व्यापक वर्णन सूर के भ्रमरगीत के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना दुर्लभ । भ्रमरगीत में भावों का सम्यक् निरूपण है। सूर ने मनोवैज्ञानिकता के साथ रस की सफल निष्पत्ति कराई है। मानव जीवन की प्रणाय सम्बन्धी समस्त सामग्री भ्रमरगीत में है। कवित्व की दृष्टि से भी सूर के भ्रमरगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यात्मक रसात्मकता साथ कवि ने निर्गुण निराकार को खंडन करके सगुण साकार का प्रतिपादन किया है।

Prasang प्रसंग ५—“सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है, उतनी चतुरता और वाग्विदग्धता भी।”

उपर्युक्त कथन की समीक्षा उदाहरण देकर कीजिए ।

उत्तर—सफल और प्रवीण कलाकार वहाँ है जो अपनी अनुभूति को चतुरता और विदग्धता से अभिव्यक्त करे। वाग्विदग्धता अनुभूति को अनुपात भर देती है। सूर की भावुक अनुभूति विनय के पदों में, वातलीला वर्णन में गोपियों के प्रेम प्रसंगों में और वियोग की उक्तियों में छलक पड़ी है। संयोग-शृंगार का वर्णन करते हुए कवि के पास विषय के लिए पर्याप्त प्रसंग के किन्तु विप्रलम्भ घटनाओं का प्रायः अभाव है। इस लिए सूर ने वियोग वर्णन में अनेक विदग्धतापूर्ण प्रकाश का आश्रय लिया है, वैसे सूर के संयोग वर्णन में भी विदग्धता के उदाहरण भरे पड़े हैं। इनमें हृदय का सहृदयता और भावुकता के सा

चतुरता

ने अश

कु

इतने में

के कृ

ह

आए हैं

उसे भू

रा

प्रकार

घटा से

अन्याय

कुटिलत

रीति से

चतुरता और विदग्धता कूट-कूट कर भरी हुई है। सयोग वर्णन में सूर ने अश्लीलता को बचाने के लिए विदग्धता का सहारा लिया है।

कृष्ण राधा के कुर्चों का मर्दन करते हुए नीबी की गांठ खोलने हैं। इतने में यशोदा आ जाती हैं। अब क्या हो, बात खुल गई। किन्तु सूर के कृष्ण अपनी बाक चतुराई से पर्दा डाल ही देते हैं—

नीबी ललित गही नदुराइ ।

कर सरोज सन ओफत रसत तव जमुमति गई आइ ।

तत्छन रुदन करत मनमोहन मन में सुधि उपजाइ ।

देखौ ढीठ देति नहि मैया राखी गेंद चुराइ ।

इसी प्रकार कृष्ण ग्वालिनी की चोली फाड़कर, हार तोड़कर भाग आए हैं और यशोदा से ग्वालिनो उनकी करतूतें बखानती है वो वे झूठ उसे झूठा बताते हुए कहने लगते हैं—

झूठेहि मोहि लगावति ग्वारि ।

खेलत ते मोहि बोलि लियो इहि,

दोउ भुज भर दीन्ही अँकवारि ।

मेरे कर अपने कुच धारति,

आपुन ही चोली धरि फारि ॥

माखन आपुहि मोहि खवायौ मैं धौं कव दीन्हों है डारि ॥

रश्मि-शिरोमणि की इसी विदग्धता पर कौन मुग्धन हो जायगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भ्रमरगीत वचन-चातुरी और भाव पूर्ण कला-विदग्धता से भरा हुआ है। गोपियों कृष्ण का हृदय चुराकर चले गये। इस अन्याय की गोपियों के हृदय में कुढ़न है। वे कृष्ण के अङ्ग-अंग की कुटिलता और रग-रग में भरी हुई कृतघ्नता को कितनी विदग्धका पूर्ण रीति से व्यक्त कर रही हैं—

‘ऊधौं अब यह समझ भई ।

नन्द नदन के अंग-अंग प्रति उपमा न्याय दई ।

कुंतल कुटिल भँवर भरि मालति भुरई लई ।

तजत न गहरू कियो कपटी जब जानी निरस भई ।

निरमोही नहिं नेह कुमुदिनी अंतहुं हेम हई ।

सूर ने उहात्मक पद्धति से भी अपनी वाग्विदग्धता का परिचय दिया है । वियोग के समय चंद्रमा दुःखदाई दिखाई पड़ता है । इस रुचि का प्रदर्शन सूर ने निम्न प्रकार किया है—

दूर करहु बीना को धरिवो ।

मोहे मृग नाहिन रथ हाँक्यो नाँहिन होत चंद को ढरिवो ।

इस प्रकार 'कर कंकन भुज टांड भई' की अभिव्यक्ति में भी वाग्विदग्धता का विलास ही झलकता है । सूर ने उहात्मक चमत्कार से मिलती हुई कहीं-कहीं पर शब्द कीड़ा भी की है—

'मन्दिर अरध अवधि हरि वदि गए हरि अहार चलि जात ।

+ × +

नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि को बरजै मोहि खात ।'

गोपियों ने कुवजा के प्रति जो उक्तियाँ कहीं हैं वे कटु व्यंग्य से भाँपे हुए हैं । उद्धव के निर्गुण का खण्डन तो व्यंग्योक्तियों के द्वारा ही किया गया है—

'जोग हमको भोग कुवजहि कौने सिख सिखाई ।

+ + +

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाव प्रवण कवि सूर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति भी कलात्मक ढंग से करते हैं । उनके कथन में चमत्कार और वैचित्र्य स्वभातः ही आ गया है । उनमें जिनती ही सहृदयता और भावुकता है उतनी ही अधिक चतुरता और विदग्धता भी है । विनय पदों में भगवान का महत्व और अपनी दीनता का उल्लेख का अप्रभाव भावुक हृदय से अनेक भाव धाराओं की सृजन किया है । वे कृष्ण पद नौका । की आस लगाए हुए कभी अपने को "सब पतितन को राजा कहते हैं, कभी "विरद बिनु करने" की धमकी देते हैं और कभी "हम भले बुरे तो तेरे" कहकर उद्धार की आर्थ्य करते हैं । इस प्रकार विनय के पदों में भाव का सागर उमड़ पड़ा है । वात्सल्य एवं श्रृंगार

वर्णन

उत्प्रेक्षा

सूर

बाल

विशेष

मिली

नहीं

और

काजि

था वै

श्रेष्ठ

वर्णन

दोनों

करने

लील

इस

विश्व

वर्णन

सूर

वर्णन में सूर की भावुकता वेगवती धारा बनकर प्रवहित हुई है। उसमें उनकी चतुरता और वाग्वैदग्ध्यता ने सौन्दर्य की द्विगुणित कर दिया है।

प्रश्न ६—“सूर बाल-कृतियों के अन्यतम कवि हैं। उन्होंने कृष्ण की बाल-लीला में बाह्य और अन्त वृत्तियों का सुन्दर निरूपण किया है।”

उपयुक्त कथन की विवेचना करो हुए सूर के वात्सल्य-वर्णन की विशेषताएं बताइये।

अथवा

प्रश्न—सिद्ध कीजिए कि सूर वात्सल्य क्षेत्र के सम्राट हैं।

अथवा

प्रश्न—सूर को वात्सल्य और शृंगार वर्णन में अपूर्व सफलता मिली है।

अथवा

प्रश्न ७—सूर में केवल बाहरी रूप-चेष्टाओं का ही विस्तृत वर्णन नहीं है। कवि ने बालकों की अन्तः प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक वात्सल्य भावों की स्वाभाविक व्यंजना की है।” विवेचना काजिए।

उत्तर—कहा जाता है कि बाल-मनोविज्ञान का जैसा अनुभव सूर को था वैसा संसार में किसी भी कवि में नहीं पाया जाता। सूर काव्य का श्रेष्ठतम भाग वह माना जाता है जहाँ उन्होंने कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया था अथवा गोपियों की विरह व्यथा का चित्रण किया है। दोनों ही क्षेत्रों में सूर अपूर्व हैं। बाल कृष्ण की विस्तृत लीला का वर्णन करने का कारण बल्लभ सम्प्रदाय की बाल उपासना थी। सूर की बाल लीला का प्रारम्भ कृष्ण जन्म की आनन्द बधाई के उपरांत हो जाता है। इस जीवन का चित्रण सूर ने इतनी बारीकी से किया है कि सहसा यह विश्वास कितना असम्भव हो जाता है कि यह एक जन्मान्ध कवि द्वारा वर्णित है। शिशु से लेकर कौमार्यावस्था तक बाल्य-जीवन के अनेक चित्र सूर ने दिये हैं। उन चित्रों को हम सामान्य रूप से चार भागों में बाँट

सकते हैं—१—रूप वर्णन, २—चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का वर्णन ३—
अन्तर्भाव, ४—संस्कारों, उत्सवों और समारोहों का वर्णन ।

रूप वर्णन में कृष्ण के सौंदर्य की उद्भावनाएँ की हैं । चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही हैं—“सिखवत चलन जसोदा मैया । अरवराय कर पालि गवाहित, डगमगाय धरणि धरै पैयाँ ।” स्वभाव चित्रण द्वारा रसाद्रेक में तो सूर अद्वितीय हैं । उन्होंने पग पग पर अन्तर्भावों का चित्रण किया है। “मैया कवहि बढे गो चोटी” वाले पद में स्पर्द्धा की कितनी सुंदर व्यंजना मिलती है । इसी प्रकार “खेलत में को का को गुमैया” वाले पद में बाल-क्षोभ का साकार चित्र मिलता है । गोचारण और माखन चोरी के प्रसंग में कृष्ण के स्वभाव के और भी चित्र हैं । “मैया मेरी मैं नहि माखन खायो” वाले पद से बालक कृष्ण की प्रत्युत्पन्नमति का सुन्दर परिचय मिलता है । वह “खयाल परे हैं मन्वा सवै मिलि मेरे मुख लपटायो” कहकर अपना दो दूसरों पर मद देते हैं । “देखि सखी अघरन की लाली” तथा “नटवर वेष काछे श्याम” आदि पदों में उन्होंने श्याम सौंदर्य की सफ़ल और पूर्ण अभिव्यक्ति की है । जब ‘नटवर वेष काछे’ श्याम आते हैं तो ‘चितवन रोके हूँ’ नहीं सकती, और जब वे ‘मुरली अघर’ पर धरने हैं तो ‘गृह व्यवहार’ और ‘आरज पथ’ थक जाते हैं और गोपियों को कृष्ण की ओर उन्मुख होने में कोई शंका नहीं रहती ।

सूर के बाल वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने यशोदा के मातृ हृदय का अत्यन्त आत्मादाित एवं कारुणिक चित्र खींचा है । “जसोदा हरि पालने झुलावै” तथा लोरियाँ गा गा कर बच्चे को सुलाती है । और “सुत मुख देखि यशोदा झूली” और उस आनंद में हाथ बटाने के लिये “बाहिर तेतव नंद बुझाए, देखो धौ सुंदर सुखदायो ।” कालियदमन, गोवधन लीला और मथुरागमन के समय के किशोर कृष्ण के सुंदर वर्णन मिलते हैं । सूर ने अपने बालवर्णन में अध्यात्म और भक्ति का अपूर्व मिश्रण किया है । अनेक अद्भुत एवं मानव के लिये असम्भव कार्य करते हुए बाल-कृष्ण माता के

लिये
तन्मय
तथा
या
जीवन
की त
जीवन
प्रसंग
तन्मय

प्राप्त
करते
लेते
अपि
राधा

कर

का

कृष्ण

का

शृंग

सिख

नित

तथा

लिये पुत्र हीरहे आते हैं—भगवान नहीं । इस कारण यशोदा की तन्मयता है । इसी तन्मयता के कारण यशोदा कृष्ण के राधा तथा गोपियों के प्रेम संबंध पर या तो विश्वास ही नहीं करती या उपेक्षा करके रह जाती हैं । सूर ने कृष्ण के बाल जीवन के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा है । इस स्थान पर कवि की तन्मयता देखते ही बनती है ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि इस जीवन का वर्णन करते हुये आघाता नहीं इसी कारण बार बार एक ही प्रसंग को नित्य नवीन ढंग से दुहराता चला जाता है । यह कवि की तन्मयता की पराकाष्ठा है ।

संक्षेप सूर वास्तव्य रस के सम्राट हैं । कहा जाता है वे स्वयं वयः प्राप्त बालक थे । स्वभाव चित्रण में वे एक प्रकार का अपनापन अनुभव करते जान पड़ते हैं और ठीक उसी प्रकार मातृ-हृदय का मर्म भी समझ लेते हैं । उन्होंने केवल कृष्ण के ही बालस्वभाव का वर्णन नहीं किया है अपितु राधा की बाल क्रीड़ा को भी समान रूप से आकर्षक बनाया है । राधा और कृष्ण का सारा प्रेम व्यापार बालकों का प्रेम व्यापार है ।

प्रश्न ७—सूर के संयोग शृंगार की विवेचना कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“हिंदी—साहित्य में शृंगार का रस राजस्व यदि किसी ने कर दिखाया तो सूर ने ।” इस कथन की विवेचना कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा और सहचार्य दोनों का योग है ।” उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए ।

उत्तर—सूर के शृंगार की पृष्ठभूमि यद्यपि आध्यात्मिक है, वे राधा-कृष्ण को प्राकृतिक पुरुष नहीं मानते वरन् वे उनको प्रकृति और पुत्र का रूप मानते हैं, तथापि उनके वर्णन लौकिक हैं । सूर का उद्देश्य शृंगार का भौतिक आनन्द दिखाने का नहीं वरन् उसमें जो भास-सिक तन्मयता आती है उसको दिखाना है । यद्यपि वे कहीं-कहीं नितांत भौतिक घरातल पर उतर आए हैं तथापि कम-स-कम उनके लिए तथा कृष्ण-भक्तों के लिए वह आध्यात्मिक विषय ही रहा ।

सूर ने कहीं-कहीं उसे मर्यादा का उलंघन किया है। प्रथम अकर्षण (सूर श्याम देखते ही रीमे, नैन नैन मिलि परी ठगौरी,) के पश्चात् एक दूसरे के परिचय की उत्कण्ठा वृक्षत श्याम कौन तू गोरी ? कहाँ रहित, काकी तू बेटी, देखीं नाहिं कहूँ ब्रज खोरी, के बाद मिलन की आवेगमयी उत्कण्ठा और पूर्व राग सम्बन्धी विरह-दशाओं का बड़ा उकृष्ट वर्णन हुआ है :—

चित चंचल कुँवरि राधा,
खान पान गई भुलाई ।
कबहूँ विलपति, कबहूँ विहँसति
सकुचि बहुरि लजाइ ॥'

सूर ने शृंगारिक भावनाओं की कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर व्यंजना की हैं—कम्प आदि का प्रत्यक्ष वर्णन करके श्रीकृष्ण की अव्यवस्थित चेष्टाओं द्वारा कम्प की व्यं ना की है। साथ ही उसमें व्यंग्य-विनोद भी आ गया है:—

‘तुम पै कौन दुहावै गैया !
इत चितवत, उत धार चलावत,
एहि सिखायो है मैया ?’

इसमें कृष्ण के प्रेम-जनित कम्प आदि की भी, जिसके कारण धारा इधर की उधर पड़ती है, व्यंजना हो जाती है।

गोपियों की मानसिक तन्मयता का भी सूर ने अञ्छा वर्णन किया है, प्रेम की अतिशयता में प्रिय का नाम बाहर आने से रोके नहीं रुकता। इसी का चित्र देखिए :—

‘ग्वालिन प्रगख्यो पूरन नेहु ।
दधि भाजन सिर पर धरे,
कहत गुपालहिं लेहु ॥
पुर बीथिन, पुर गली,
जहाँ तहाँ हरि नाऊँ ॥
समुझाई समुझत नहीं,

गा है।
मिलि
वृक्षत
हैं कहूँ
वै राग

सिख दै विथके गाँऊँ ॥'

शृङ्गार के अन्तर्गत आलम्बन के सौंदर्य का वर्णन आता है। उस सम्बंध में सूर ने एक-से-एक सुंदर चित्र उपस्थित किये हैं। सूर शृंगार की यही विशेषता है कि उसका व्यापार ग्वाल-जीवन के प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण खुले क्षेत्र में बड़ी मर्यादा के साथ चलता रहता है। गोचरण करके लौटते हुए श्रीकृष्ण जी का एक चित्र देखिए :—

खंजना
वस्थित
नोद भी

‘नटवर वेष धरे ब्रज आवत ।
मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल,
कुटिल अलक मुख पर छुवि पावत ॥
भ्रुकुटी कुटिल, नयन अति चचल,
यहि छुवि पर उपमा इक धावत ।
धनुष देखि खंजन विवि डरपत
उड़ि न सकत उड़िबै अकुलावत ॥’

ण धारा

श्रा वर्णन
के नहीं

सूर ने मुख-भण्डन का वर्णन करते हुए नेत्रों की चंचलता का कारण भी दे दिया है। भौंह-रूपी धनुष को देखकर खंजन डरते हैं, उड़ाना चाहते हैं और उड़ नहीं सकते, इसी कारण उनमें चंचलता है। सूर के सौंदर्य के सिलसिले में नेत्र आलम्बन-रूप से भी वर्णित किये गए हैं और आश्रय-रूप से भी :—

‘देखि री ! हरि के चंचल नैन ।
खजन मीन मृगज चपलाई
नहि पटतर एक नैन ॥

x x x x

अरुन असित सित झलक पलक
प्रति, को बरने उपमाय ।
मनो सरस्वती गंग जमुन मिलि
आगम कीन्हौ आय ॥’

इसमें नेत्रों के तीनों रंग लेकर सूर ने नेत्रों की त्रिवेणी का सा पावन प्रभाव ही दिखया है। रस लीन की भाँति मारने, जिलाने और उन्मुक्त करने का प्रभाव नहीं दिखाया। सौंदर्य की पूर्णता और अनंतता को आश्रय के दो छोटे नेत्रों की असमर्थता प्रकट करके सूर ने सौंदर्य के आस्वाद करने वाले की मानसिक दशा का अच्छा चित्रण किया है:—

‘जो विधिना अपवस कर पाऊँ ।

× × × ×
लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं

पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ ।

इक टक रहे पलक नहिं लागै

पद्धित नहीं चलाऊँ ।’

आश्रय के नेत्रों का एक और वर्णन लीजिए :—

‘अंखियन यही टेब परी ।

कहा करौं वारिज मुख ऊपर

लागत ज्यों भ्रमरी ।’

इसमें दोनों उपमानों में भी वही सहज संबंध है जो दोनों उपमेयों में है। भ्रमरी में आँखों की पुतली से रूप-सादृश्य भी है।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत दान-लीला, वसन्त, होली, मुरली और रास का विशेष स्थान है। मुरली से तो गोपियों ने असूया भाव (ईर्ष्या) भी प्रकट किया है :—

‘मुरली हरि कौं नाच नचावत,

ऐते पर यह बाँस-बसुरिया

नंद-नंदन कौं भावति ॥

× × × ×

हम पर रिस करि करि अवलोकत,

नासा पुट फरकावत ।

सूर स्याम जब जब रीभत है

तब तब साँस डुलावत ॥’

पावन
उन्मुक्त
ता को
दर्प के
—

सूर ने अनुभावों के साम्य का कैसा अच्छा लाभ उठाया है ! यह मुरली की तान जीवन की उस साम्यमय स्थिति की प्रतीक है जो जीवन को सरस और जीने योग्य बनाती है इसलिए आकुल जीवों के प्रतिनिधिरूप सखाओं के मुख से भी यही पुकार निकलती है—‘छबीले मुरली नेकु वजाय’। रास के संबंध में सूर ने कई गतिमय चित्र उपस्थित किये हैं, उनमें गोपियों की तन्मयता भी दर्शनीय है :—

‘गति सुगंध नृत्यत ब्रज-नारी

हाव भाव सैन नैन दे दे रिभवति ब्रज-नारी ॥

+ + + +

चंचल चलत भूमिये अंचल,

अद्भुत है वह रूप ।

नागरि सब गुननि आगरि,

मिल चलत पिय संग ।

कबहुँ गावत कबहुँ नृत्यत,

कबहुँ उघटत रंग ॥

मण्डली गोपाल गोपी,

अंग अंग अनुहारि ।’

सूर प्रभू धनि नवल भामिनि,

दामिनी छबि डारि ॥’

मेयों में

मुरली

या भाव

‘उघटत रंग में थोड़ा हास्य-विनोद भी आ गया है जो शृंगार का सहायक है ।

सारंश यह है कि प्रेम की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण-ज्ञान सूर को था वैसा और किसी कवि को नहीं था । सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं, प्रेम सङ्गीतमय जीवन को गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता । राधा-कृष्ण के रङ्ग-रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अन्त्य भण्डार प्रतीत होता है । प्रेमोदय-काल की विनोद वृत्ति और हृदय प्रेरित भावों

की छटा चारों ओर ललकी पड़ती है। सूर का सारा संयोग-वर्णन लम्बी चौड़ी प्रेम-चर्या है जिसमें आंदोल्लास के न जाने कितने रूपों का विधान है। रामलीला, दान-दीला, मानलीला इत्यादि सब उसी के अंतर्भूत हैं।

प्रश्न ८—“वियोग की जितनी अन्तर्दशायें हो सकती हैं वे सभी सूर में मौजूद हैं।” उदाहरण सहित स्पष्टीकरण कीजिए।

अथवा

प्रश्न—सूर के वियोग-शृंगार की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर—सूर की गोपियों ने दुःख में अपना सहज चापल्य नहीं छोड़ा था किन्तु इन चापल्य की लहरों के भीतर विरह का बड़बानल धधक रहा था। इस विरह ने ही उनके संयोग के गाम्भीर्य को आलोकित किया। गोपियों का हास-विलास केवल जवानी की उठती हुई तरंग न थी जो सहज में विलीन हो जाती। विरह की अग्नि में वासना और ऐन्द्रिकता का कदम चल गया था और उनका प्रेम देदीप्यमान स्वर्ण ही निलर आया था। विरह द्वारा प्रेम के परिपुष्ट होने की बात को सूर ने इस प्रकार रूपकों द्वारा व्यक्त किया है—

‘जधौ ! विरहौ प्रेम करै।

ज्यों बिनु पुट पर गई न रंगहिं, पुट गई रसहि परै।

जौ आँवौ घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै॥’

आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि गोपियों का प्रेम एक आकस्मिक घटना न थी। वह सचमुच ‘विरवा’ या बेल के ही रूप में बढ़ा था—‘बारे ते बलबीर बढ़ाई पोसी प्याई पानी।’ बाल-लीला यौवन-लीला में परिणत हो जाती है—‘लरिकाई को प्रेम कदो अलि, कैसे करिकै छूटत’। बात यह है कि बाल्यकाल में संस्कार बड़े पक्के होते हैं। इसी कारण सूर की गोपियों में विद्यापति की गोपियों की तरह केवल रूप-लिप्ता ही नहीं है बरन् सहचर (Fellowship)

की भावना भी अधिक है। कृष्ण के साथ केलि-विहार के सम्बन्ध-तन्तु सारे ब्रज में व्याप्त हो जाते हैं। संयोग का सुख, स्मृति रूप से विरह का उद्दीपन बन जाता है। उनको फूल भी शूल बन जाते हैं—'खटकट है वह सूर हिय में माल दई जो फूलन की।' विरहपूर्ण मानसिक दशा के कारण उसके लिए सारी सृष्टि वेदनामय रूप धारण कर लेती है—'हरि विनु फूल भाड़ी से लागत, झरि-झरि परत अंगार।' मानसिक दशा हमारी अनुभूति किस प्रकार बदल देती है इसका एक और उदाहरण लीजिए ?

'विनु गोपाल वैरिन भई कुंजें ।

तब ये लता लगति अति सीतल,

अब भई विषम ज्वाल की पुंजें ।'

सूर ने विरह-वर्णन में व्यंजना-शक्ति का खूब प्रयोग किया है। गोपियों कृष्ण को ब्रज में न आने का संदेशा भेजती हैं और इसके द्वारा अपनी विरह-दशा की व्यंजना कर देती हैं, 'सब बल्लभी कहति हरि सों दिन मधपुरी रहौ', 'आज काल तुम हू देखत हो तपति तरनि सम चन्द', 'सिंह, वृकन सम गाय बच्छ ब्रज वीथिन वीथिन डोलत।' इस संदेश द्वारा गोपियों ने अपनी मानसिक दशा का भी वर्णन कर दिया। विरही को जब साक्षात् दर्शन का सुख नहीं मिलता तब वह गण-कथन, नाम-स्मरण तथा लीलाओं के अनुकरण द्वारा एक प्रकार का मानसिक प्रत्यक्ष-सा कर लेता है।

कृष्ण-लीलाओं के अनुकरण में गोपियों का वर्णन देखिए :—'एक ग्वारि गोधन लै रेंगत, एक लकुटि कर लावति—एक ग्वारि नटवर बहुलीला एक कर्म गुन गावत'। नन्ददास जी ने तो गोपियों की तन्मयता को इतना बढ़ा दिया है कि उनकी कल्पना का बाह्य प्रेक्षण (Projection) हो गया है और वे कृष्ण के सामने ही देखने लगती हैं—'ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे, आय गये छवि छाव बने वियरे उर बागे'। वे प्रार्थना करने लगीं—'दुःख जलनिधि हम बूढ़ीं कर अवलम्बन दहु'।

सूर ने कृष्ण की रूप-माधुरी के बड़े सुन्दर वर्णन कराये हैं। कृष्ण का रूप उनके वर्णन से बाहर है। रूप की अनन्तता ही तो उसे रमणीयता देती है और इसीलिए वह ब्रह्मानन्द का-सा गूँगे के गड़-संदेश वर्णनातीत रहता है। एक गोपी कहती है :—

‘आलि हौँ कैसे कहौँ हरि के रूप रसहिं,

मेरे तन में भेद बहुत विधि, रसना न जानहिं नयन की दसहिं ।

जिन देखे तो आहिं बचन विनु जिन्हें बचन दरसन न तिसहिं ।’

गोस्वामी जी की प्रसिद्ध उक्ति ‘गिरा अनयन नयन विनु बानी’ का इतना भावसाम्य है कि कहा नहीं जा सकता कि किसने किससे यह उक्ति ली है या दोनों ने ही किसी तीसरे से ली है।

विरह के उद्दीपन—सूर ने विरह-वर्णन की परम्परा के अनुकूल ऋतुओं का उद्दीपन रूप से वर्णन किया है किन्तु कहीं-कहीं उन्होंने उसमें बड़ी नवीनता, उत्पन्न कर दी है। वर्षा को वे विरहिणी के शरीर में ही दिखलाते हैं—‘देखो भाई ! नयनन सों घन हारे, बिन ही न्यसल बरसत निसि बासर सदा सजल दोउ तारे ।’ वर्षा जब शरीर में ही हो तब वे उससे पोछा छुड़ाकर कहाँ जायँ ! इसमें यह भी व्यंजना है कि कृष्ण ने ब्रज को वर्षा के कोप से बचाया था—‘बूझत ब्रजै सूर को राखै बिन गिरवरधर प्यारे ।’ कभी वे बादलों में अपने प्रियतम की अनुहारि देखकर अपनी स्मृति को और भी सजीव और शायद सजल बना लेती है—‘आज घन स्याम की अनुहारी । उनै आए साँवरे ते सजनी ! देखि रूप की आरि ।’ ऐसे वर्णनों में कृष्ण के घनश्याम नाम की सार्थकता हो जाती है।

सूर ने चन्द्र आदि उद्दीपनों को खूब कुसवाया है। चंद्र को ही नहीं वरन् उसके उत्पन्न करने वाले कारणों (समुद्र-मन्थन की सामग्री) की भी निन्दा की गई है—‘निंदति सैल, उदधि, पन्नग को, सापति कमठ कठोरहिं । गोपियों द्वारा इस बात पर भी खीझ प्रकट की गई है कि वर्षा के उद्दीपन मथुरा पहुँचकर कृष्ण को क्यों नहीं सताते :—

‘किधौँ घन गरजत नहिं उन देसनि ?

जाय
हृदय
गया
कहिय
‘ज्यों’
सम्बन्ध
हरे ।

विरह
तो ध
तुलस
कुछ
कहती
का ध
किंतु
हुआ
कारण
की दे
पद मु
कथा

इतनी
राम
है ।

किथों वहि इन्द्र हठिहि हरि वरज्यौ, दादुर खाए सेसनि ।'

सूर ने भी प्राकृतिक वस्तुओं को विरह से व्याप्त दिखाया है किंतु ज्ञायसी की भाँति प्रत्येक वस्तु में विरह की झलक नहीं देखी है गेहूँ का हृदय विरह से फटा हुआ नहीं दिखलाया वरन् उन्हीं चीजों को लिया गया है जिनका कृष्ण से सम्बन्ध था—'देखियत कालिंदी अति कारी ! कहियो पथिक ! जाय हरि सों ज्यों भई विरह-जुर-जारी ॥'—इसमें 'ज्यों' द्वारा की हुई हेतुप्रेक्षा इसकी अस्वाभाविकता को बचा लेती है । सम्बन्ध के कारण ही सूर ने मधुवन से पूछा है 'तुम कत रहत हरे ।'

तुलसी और सूर में कौशल्या तथा यशोदा का वात्सल्य-सम्बन्धी विरह-वर्णन बहुत अंशों में एक-सा है किंतु 'संदेसो देवकी सौँ कहियो, हौँ, तो धाय तिहारे सुत की', 'ब्रज लीजो ठोक बजाय' की मार्मिक वेदना तुलसी में खोजने पर भी न मिलेगी । कौशल्या का शील कैकेयी के प्रति कुछ कहने के लिए उनका मुह बंद किये हुए था । दशरथ थे नहीं, वे कहतीं किससे ? कहीं कहीं कौशल्या का दैन्य कुछ बढ़ गया है । रामचंद्र का धनुष तथा उनके घोड़े कौशल्या के विरह को उद्दीप्त कर सकते थे किंतु उनकी पन्ध्रियों के उल्लेख में तुलसी का दास्य-भाव भीतर से भाँकता हुआ दिखाई पड़ता है । सीताजी के विरह में राम के एक पत्नीव्रत के कारण उपालम्भ और असूया का अभाव है । उसमें दैन्य और परिस्थिति की बेबसी है । कबीर का विरह केवल आलंकारिक है । यद्यपि सूर के भी पद मुक्तक की कोटि में आते हैं तथापि वे ऐसे स्फुट नहीं हैं कि उनमें कुछ कथा प्रसंग न हो ।

X

X

X

विरह की वास्तविकता—अब यह प्रश्न होता है कि जब गोपियों इतनी निकट थीं तब वहाँ चली क्यों न गईं । इसी कारण सीता और राम की अपेक्षा गोपियों के विरह को आचार्य शुक्ल ने खिलवाड़ कहा है । प्रश्न स्थान की दूरी का नहीं था । दूर रहते हुए भी निकट होने का

अनुभव सम्भव है और निकट होते हुए भी दूर हो सकते हैं। दादुर कमल के पास होते हुए भी उसका रस नहीं लेता :—

‘दादुर, रहत सदा जल-भीतर
कमलहिं नहिं नियरात ।
काठ फोरि घर कियो मधुप पै
बँधे अम्बुज के पात ॥’

गोपियों को दुःख इस बात का नहीं था कि कृष्ण किसी दूर देश में हैं वरन् इस बात का था कि अयं उनके प्रति उनका भाव बदल गया था। भाव बदल जाने पर एक छत के नीचे बैठे हुए भी दूर हो जाते हैं :—

‘मधुवन बसत बदलि से गे वे,
माधव मधुप तिहारे ।
इतनिहिं दूर भये कुछ औरै,
जोइ जोइ मगु हारे ॥’

कृष्ण के राजा होने पर गोपियों ने बड़े ही मधुर व्यंग्य कसे हैं—‘हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। राजधर्म सब भए सूर जहँ प्रजा न जायँ सताए।’ इसकी तुलना गीतावली में सीताजी के लक्ष्मण द्वारा भेजे हुए सन्देश से ही कर सकते हैं—‘पालिवी सब तापसिन ज्यों राजधर्म विचारि’।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर का विरह वर्णन वियोग वारिश अनुभूति के सागर में डूबकर पाठक भाव निमग्न हो जाता है। जिस विरह वारीश की थाह उद्धव जैसे शानी भी न पा सके, हमारी तो शक्ति ही क्या है।

व्याख्याएँ

अलिगत की गति.....गावै ।

प्रसंग—विनय के प्रस्तुत पद में सूर सगुण साकार ब्रह्म कृष्ण की लीला गायन करने के कारण पर प्रकाश डाला रहे हैं—

कमल

केन्द्रीय-भाव—निर्गुण ब्रह्म निराधार होने के कारण कठिन है। किन्तु सगुण साकार की प्राप्ति भक्त को सरलता से हो जाती है। इस लिए सूर को भी सगुण ब्रह्म की लीला गायन करना ही सचिकर है। प्रस्तुत पद में इसी तथ्य पल्लवन है।

श में
बदल
र हो

व्याख्या—निर्गुण, निराकार की गति अकथनीय है। उसकी अनुभूति अनिवर्चनीय है। किन्तु वह गूँगे के गुड़ के समान है। गूँगा व्यक्ति गुड़ खाकर सन्तोष लाभ करता है। किन्तु उसे कह नहीं सकता। उसी प्रकार निर्गुण निराकार की अनुभूति अत्यन्त आनन्दपद है। वह हृदय में अत्यन्त सन्तोष उत्पन्न करती है। किन्तु निर्गुण निराकार के प्रति प्रत्येक की पहुँच नहीं है। उसकी जो पहिचान ले वही पा सकता है वह रूप, रंग, गुण और अति से रहित है। उसके पाने का कोई उपाय भी नहीं है। अतः उसकी साधना करता हुआ मन आधार हीन होकर चारों ओर भ्रमित फिरता रहता है। मन उसका चिन्तन नहीं कर सकता, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। इस प्रकार निर्गुण निराकार सब प्रकार से उग्रगय है इस लिए सूरदास कहते हैं कि मैं सगुण साकार ब्रह्म की लीलाओं का गान करता हूँ।

कसे
जा न
भेजे
जधर्म

विशेष - १—प्रस्तुत पद में सूर ने निर्गुण निराकार के स्थान पर सगुण साकार का प्रतिपादन किया है।

२—“जो जाने सो पावे”

रिश
विरह
त ही

सोइ जानहि जेति देहु जनाई ।

जानत तुमहि तुमहि हुई जाई ॥

गूँगे की सो सर्करा । तुलसी

ज्यों-ज्यों खाय मिठाय ॥

कवीर

अलंकार—दृष्टान्त, विनोक्ति, अनुप्रास और अर्थान्तर न्यास।
माधव जू.....सकत चराई ।

ण की

प्रसंग—इस पद में सूरदास जी भगवान से इन्द्रिय-निग्रह के लिए प्रार्थना करते हैं। सारी इन्द्रियों की प्रतीक एक प्रधान इन्द्रिय को स्वीकार

किया है और गाय के रूपक द्वारा उसकी कुटिलताओं का वर्णन इस प्रकार कर रहे हैं—

व्याख्या—हे माधव जी ! आप कृपा करके इस गाय (इन्द्रिय) को जरा रोकिये । क्योंकि यह दिन रात इधर-उधर चक्कर लगाती है और वह मेरी पकड़ के परे है । यह बहुत भूखी है और वेद रूपी वृक्षों के पत्तों खाकर भी संतुष्ट नहीं होती अर्थात् वेदों के बताये गये धर्म से भी विमुक्त कर देती है । यह अठारह घड़ों का (पुराणों) का पानी पीती है परंतु फिर भी उसकी प्यास नहीं बुझती । (पुराणों से भी इसका समाधान नहीं होता) मैं इसके आगे छहों रसों को रखता हूँ क्योंकि उसे उन्हीं की गंध अच्छी लगती है परंतु फिर भी वह अनेक प्रकार के खाने योग्य और न खाने योग्य पदार्थों को खाती फिरती है । जिसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता । (षट् दशनों से भी इसकी शांत नहीं और यह विषयों के पीछे मारी-मारी फिरती है । इसने आकाश, पृथ्वी, नदी, पर्वत, तथा बानों को भी खा लिया परंतु इसको क्षुधा शांत नहीं हुई । यह अत्यन्त ढीठ और कठोर है और सदैव त्रिगुणों में लीन रहती है । यह अपनी दुष्टता से राक्षस, मनुष्य और देवताओं को सर पर रखकर उनके राक्षसत्व, मानवत्व और सुरत्व का हरण कर लेती है । अपने मुख को सुन्दर बनाकर तथा भौंहों को छवोला बनाकर वह चित्त को चुराकर चली चली जाती है । (अपना आकर्षक रूप बनाकर संसार को ठगती फिरती है) इस गाय के नीले खुर, लाल आँखें और श्वेत रंग के सींग हैं (यहाँ नीला रंग आकाश का, लाल तेज का और सफेद यश का प्रतीक है) अर्थ यह है कि कर्ण रस, नेत्र रस और यश की इच्छा से वह चौदहों भुवनों में चक्कर लगाती है । यह कहाँ समा सकती है ? इसको वश में करने के लिए नारद, शुक आदि मुनिजन भी उपाय करते-करते थक गये । उसे हे कृपानिधि किस प्रकार से वश में कर सकता हूँ । अतएव आप मुझ पर ऐसा कृपा करें जिससे मैं उसे वश में कर सकूँ ।

विशेष १—यहाँ पर प्रतीक रूप में सभी वस्तुओं का विवेचन किया गया है ।

वर्णन इस

अलंकार रूपक—२ रस-सांत ।

अब मैं नाच्यो..... करौ नंदलाल ।

न्द्रिय) को
है और
हों के पत्तों

भी विमुख
ही है परंतु
समाधान

उन्हीं की
गाने योग्य
न भी नहीं

और यह
दी, पर्वत,
हुई । यह

है । यह
कर उनके
ने मुख को

कर चली
तो फिरती
है (यहाँ

प्रतीक है)
ह चौदहों
ने वश में

थक गये।
आप मुझ

चन किया

प्रसंग—संसार की विषय वासनाओं में लगा हुआ भक्त अपनी दीन दशा पर पश्चाताप प्रकट करते हुए अपनी दोनावस्था के चित्र भगवान के समक्ष इस प्रकार खींच रहा है—

व्याख्या—हे गोपाल ! मैं इस विलासी संसार में बहुत नाच, नाच चुका हूँ । मेरी पोशाक ही काम और क्रोध की बनी हुई है और गले में विषय वासना रूपी सुंदर माला को पहन लिया है, अर्थात् मैंने विषयों को बड़े प्रेम से गले लगा लिया । पैरों में अत्यंत बड़े अज्ञान रूपी घुङ्गरु बज रहे हैं और उनमें से निन्दा का बड़ा ही मधुर शब्द निकल रहा है । अर्थात् मोहान्धकार के कारण मुझे दूसरे की निन्दा करना अच्छा लगता है । भ्रम से भरा हुआ मेरा मन पखावज बना हुआ है और कुसंगति रूपी चाल चल रहा है । अर्थात् मैं सदैव से ही बुरे कर्मों में लिप्त रहा हूँ । तुष्णा मेरे हृदय के अंदर शब्द कर रही है । मैंने माया का कमर बंद कमर में बाँध रखा है और मस्तक पर लोभ का तिलक लगा लिया है । इस प्रकार मैंने करोड़ों कलाएँ दिखाई हैं । मुझे जल, थल और काल का ध्यान नहीं है । अर्थात् मैं अनेक जन्म-जन्मांतरों में धूमता रहा हूँ । इसलिए हे भगवान मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी सब अविद्या को दूर कर दीजिए ।

विशेष १—दैत्य का कितना भव्य निरूपण इस पद में महाकवि सूर ने किया है ।

२—सांग रूपक अलंकार का कितना सुंदर उदाहरण है । इससे कवि की तद्विषयक सिद्धहस्तता का पता चलता है ।

चलि सखि उड़िवों नाहिं ।

प्रसंग—यहाँ पर सूरदास जी आत्मा को संबोधन करते हुए यह निवेदन करते हैं—

व्याख्या—हे सखि (आत्मा) चल, उस शरीर को धारण करें (उस सरोवर में चले) जहाँ पर पद्म चक्र बिना प्राण वायु के समान विकसित

होते हैं। अर्थात् जहाँ पर बिना सूर्य के ही कमल खिलते हैं। जहाँ पहुँच कर आत्मा (हंस) उज्ज्वल पंखों (ज्ञान कर्म) वाली हो जाती है। और आनन्दपूर्वक स्नान करती है। उस सरोवर के जल में उत्पन्न होने वाले मुक्ति रूपी मोतियों को चुन-चुन करके खाती है। उसकी जिहा में (रसन-मध्य) जो सुन्दर एवं मधुर, रसानुभूति (परमात्मा का प्रेम) जो मधुर रस के कारण से उत्पन्न होती है उससे वह अत्यन्त प्रसन्न है। इसके साथ ही साथ यह आत्मा कमल की सुगन्धि (प्राणायाम) जो अत्यन्त शीतल है, उसे प्राप्त कर अपने पापों को नष्ट करती है। ये कमल बिना जल के ही सदैव खिले रहते हैं, एक पल मात्र के लिए भी नहीं मुरझाते हैं। इस उथले जल को देखकर कुछ तो मन में विचार करो। (संसार रूपी थोड़े से जल को देखो जो शीघ्र ही नष्ट होने वाला है) यह भ्रमर रूपी जीव उन घने कमल-दलों पर गुंजार करता है (शरीर के अंदर के घटे कमल आदि) तथा उन पर बैठकर विश्राम लेता है जिससे जीवन शक्ति बढ़ती है। विश्राम का अर्थ प्राण वायु की गति को रोकता है। सूरदास जो कहते हैं कि वहाँ उड़कर क्यों नहीं चलते हो, जहाँ से फिर उड़ना नहीं पड़े अर्थात् जहाँ पहुँचकर जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा मिल जावे।

विशेष—इस पद में सगुण रहस्यवाद का सुन्दर निर्वाह किया है। जो दर्शनीय है।

अलंकार—रवि बिना विकसति में बिना कारण के कार्य होने से विभावना, मुक्ति में मुक्ता का आरोप से रूपक, यत्रतत्र अनुप्रास, सगस्त पद में प्रतीक शैली का प्रयोग है।

काव्य-सौंदर्य १—रस शांत।

अपुन पौ.....कौने पकरयौ।

प्रसंग—अज्ञान के कारण जीव अपने को न पहचाना करो भमित हो रहा है। सूर प्रस्तुत पद में इसी तथ्य का निरूपण कर रहे हैं।

व्याख्या—अपनापन, अपनत्व का अभिमान स्वयं ही जाता रहा जिस प्रकार कि काँच के घर में कुत्ता भौंक-भौंक कर हार जाता है।

जहाँ पहुँच
हैं। और
होने वाले
में (रसन-
जो मधुर
हैं। इसके
जो अत्यंत
फल बिना
हीं मुरझाते
ने। (संसार

यह भ्रमर
के अंदर के
जैसे जीवन
रोकता है)
जहाँ से फिर
से छुटकारा
ह किया है।

कार्य होने से
, सरस्त प

रो भमित है

जाता रहा
जाता है

हरिण की नीम में ही कस्तूरी (सौरभ) रहती है फिर भी वह भ्रमवश पौधों और घास की पत्तियों को सूँघता फिरता है। जैसे स्वप्न में राजा निर्धन (रंक) हो गया अथवा चोर (तसकरि) को पहरेदार (अरि) पकड़ ले, जैसे शेर अपनी ही परछाईं को देखकर स्वयं ही कुएँ में जा पड़ा, इसी प्रकार से स्फटिक शिला में अपनी परछाईं देख कर हाथों अपने दांत अड़ा कर जम गया, बन्दर से जिस प्रकार मुट्ठी भर अन्न का मोह छोड़ा नहीं गया; मैं भी इसी प्रकार घर-घर और द्वार-द्वार भटकता रहा। सुरदास कहते हैं कि हे कमलिनी पर भ्रमित भ्रमर! तुझे किसने बन्दी बना रखा है?—अर्थात् हम स्वयं ही अपने बुद्धि—विभ्रम से माया में फसे रहते हैं।

विशेष—एक वन में एक सिंह रहता था। वह जंगल के बहुत से जानवरों को मार डाला करता था। तब यह निश्चय किया कि प्रतिदिन एक पशु उनके भोजन के लिए भेज दिया जाय। सिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। एक दिन एक खरगोश की बारी आई। वह बड़ी देर करके सिंह के पास पहुँचा। सिंह ने विलम्ब का कारण जानना चाहा तो खरगोश ने कहा श्रीमान् जी! पास के जंगल में एक दूसरा सिंह आ गया है, वह मुझे मार कर खा जाना चाहता था परन्तु मैंने आपका नाम लिया, तब भी उसने मुझे बड़ी कठिनाई से आने दिया, सिंह को अपने प्रतिद्वन्द्वी का साहस सुन-देख कर बड़ा क्रोध आया और बोला, चलो मैं उसे अभी मारे डालता हूँ। खरगोश आगे हो लिया और एक कुएँ के पास जाकर बोला, वह सिंह इसी में रहता है। सिंह ने कुएँ में दहाड़ मारी तो प्रतिध्वनि में वैसी आवाज आई। जब उसने भाँक कर देखा तो उसे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। ईर्ष्यालु सिंह कुएँ में कूद पड़ा और मर गया। खरगोश वापस लौट आया।

अलंकार—भान्तिमान, दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास।

अपुन पौ.....गूंगो गुर खायो।

प्रसंग—आत्मज्ञान होने पर जीव स्वयं आनंद स्वरूप हो जाता है।

कवि इसी तथ्य को यहाँ पल्लवित कर रहा है।

व्याख्या—अपनापन अपने में ही मिल गया। गुरु की वाणी रूपी शब्द से हृदय उज्ज्वल हो गया। सद्गुरु ने इसका भेद बता दिया है। जिम प्रकार से हरिण कुरंग अपनी नाभि में कस्तूरी रखते हुए भी इधर-उधर खोजता फिरता है परंतु जब चैतन्य होकर जागृत हुआ तो उसे अपने ही शरीर में (सब कुछ) मिल गया। राजकुमार ने अपने गले के मणि-मय आभूषण को भ्रम से कहीं खो दिया (इस जीवात्मा ने भगवान्‌की धन को खो दिया) परंतु जब सद्गुरु ने बता दिया तो मन की समस्त दुर्वासनाएं नष्ट हो गईं सपने में यह जान पड़ा कि स्त्री खो गई और बालक भी कहीं भटक गया परंतु जागने पर सब कुछ ज्यों का त्यों पाया, न कोई कहीं गया, न कोई कहीं से आया। सूरदास कहते हैं कि जो इस (रहस्य) को समझ लेता है वह मन ही मन मुस्कराता है। इन सुख की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता है, जैसे गूंगे का गुड़ (वह उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता है)।

अलंकार—दृष्टांत, उपमा।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में सूर कृष्ण के बाल-सौंदर्य का वर्णन कर रहे हैं। उनके सौंदर्य ने समस्त उपमानों को पराजित कर दिया है—

व्याख्या—मैं श्रीकृष्ण की बाल-छवि का वर्णन करता हूँ जो समस्त सुखों की सीमा है अर्थात् जिस शोभा के दर्शन पाकर और कुछ देखना शेष नहीं रह जाता है तथा कामदेव के सौंदर्य को लज्जित करने वाली छवि है। भुजाओं ने भुजङ्गों को, गेत्रों ने कमलों को तथा मुख बदन ने चन्द्रमा को पराजित कर दिया है और यह सब इसी कारण बिलों में सर्प जल में कमल तथा नभ में, चन्द्रमा उपमाहीन हो जाने के भय से रहने लगे हैं। उनके सुन्दर बाल हैं, कोमल शरीर हैं और उन्हीं के उद्युक्त आभूषण भी पहने हुए हैं। मानों सुन्दर-शृंगार का गौधा अद्भुत फलों सहित पल्लवित-विकसित हुआ है। चलते समय चरणों की परछाईं घुटनों के बल चलने से, मणियों से निर्मित आंगन में पड़ती हैं। मानो पृथ्वी अपने हृदय में सम्पुट कमलों (दोनों हाथ तथा चरणों की शोभा) को भर रही है। नन्द की स्त्री (यशोदा) अपने ऐसे सौंदर्यशाली पुत्र को

देखकर अपने पूर्व जन्म के पुण्य-फल का अनुभव करती है अर्थात् मानती है कि पूर्व जन्म के पुण्यों में ही ऐसा पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ है। सूरदास कहते हैं कि मेरे हृदय में श्यामसुन्दर की किलकारी से युक्त, सुन्दर लड़-खड़ाहट बस गई है।

काव्य-सौन्दर्य—१ संयोग वात्सल्य रस।

२—अलंकार—वृत्त्यानुपास, प्रतीप, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा।

श्याम सौं....रहत मिति मानि ॥

प्रसंग—कृष्ण के प्रेम में डुबी हुई कोई गोपी कह रही है—

व्याख्या—श्यामसुन्दर से कैसे स्नेह किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक क्षण उनका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है, एक ऋत्वि नहीं रहती जिसे सम्मुख रख कर प्राप्ति की जा सके। कृष्ण का सौन्दर्य क्षण-क्षण में अभिनव सौन्दर्य धारण करता है (क्षण-क्षण यन्त्रवतामुपैति तदेव रूपं रम-रमणीयबुद्धि और चित्त को मिला कर (श्याम के साथ रहते हैं) एक पल तायाः) मेरे नेत्र एकटक (उसी ओर) लगे रहते हैं, सदैव रात-दिन, मन, के लिए भी उस शोभाधाम को हृदय में लाने का अवसर ही नहीं देते। समझ में नहीं आता कि वे प्रत्यक्षतः ही आनन्द के सागर हैं अथवा आनन्द की निधि है, सखि ! यह विरह है कि संयोग है अथवा दोनों के बीच की अवस्था है, दुख और सुख है अथवा इसमें लाभ है या हानि है। होम की अग्नि घी डालने से बुझती नहीं है वल्कि और अधिक उमड़ती है। सूरदास कहते हैं कि नेत्रों की आदत ऐसी ही पड़ गई है। इधर तौ लोभी नेत्र हैं उधर रूप के सागर (श्याम हैं, दोनों में से कोई भी सीमा सहित नहीं है (कोई भी अपने को छोटा नहीं मानता)

अलंकार—रूपक।

मुरली तज....सुसीस डुलावति।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपना सौतिया भाव प्रकट कर रही हैं।

व्याख्या—मुरली तब भी गोपाल को प्रिय लगती है, हे सखी ! सुन, यद्यपि वह नन्दनन्दन को विभिन्न प्रकार से नाच नचाती है उनको एक ही

पैर से खड़ा रखती है और अपना अत्यधिक अधिकार दिखलाती है। कृष्ण का अंग कोमल है परंतु आप कठिन आज्ञा देती हैं, जिसके कारण उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है। यह कृष्ण को, अपने वश में जानकर गिरिधर की गर्दन तक को झुका देती है। स्वयं अधरों रूपी शय्या पर लेटकर, उनके कमल-करों से अपने चरणों को इधर-उधर कराती है। सूरदास कहते हैं कि एक क्षण भी श्यामसुन्दर इसे प्रसन्न हुआ जान कर अपने अंग फड़काने लगते हैं और सिर झुलाने लगते हैं यह उनकी कुटिल भ्रुकुटी और नासिकापुटों को फड़का कर स्वयं भी क्रोधित होती है और गोपाल को भी हमारे ऊपर क्रोधित कराती है।

विशेष— १ मुरली-वादक कृष्ण एक ही पैर पर खड़े होकर मुरली बजाते हैं और मुरली वादन के समय उनकी ग्रीवा टेढ़ी हो ही जाती है।

(२) गिरिधर नारि नवावति' में गिरिधर शब्द पर ध्यान दीजिए। जिसको गरदन गिरिराज पर्वत को उठाते समय, उसके भार से नहीं झुकी, उसे मुरली ने झुका दिया।

(३) मुरली के स्वर ही उसके चरण हैं। बजाते-गाते समय नासापुटों का फड़कना तथा भौंहों का टेढ़ा हो जाना स्वाभाविक है परंतु यहाँ पर उनका विपरीत अर्थ लेकर चमत्कार कर दिया गया है।

अलंकार—रूपक, परिकरांकुर।

ग्वालिनी तुम''''अधर रस लेहु।

शब्दार्थ—उरहन = उपालम्भ, शिकायत। विरत = विरक्त। गेह = घर। अग्नि सलाकत = आग में गर्म करके सीधा करना या छेद करना। देह = शरीर। तेहु = क्रोध। रिझै = प्रसन्न।

प्रसंग—गोपियों के व्यंग का सरलता से मुरली उत्तर दे रही है—

व्याख्या—गोपियों की ओर से ऐसा उपालम्भ सुनकर मुरली ने उत्तर देते हुए कहा कि अरी ग्वालिनि तुम ऐसा उलाहना क्यों देती हो ? तुम तनिक श्यामसुन्दर के पास जाकर तो पूछो कि उनसे मेरा स्नेह कैसे जुड़ा

है । मैं तो बचपन से ही विरक्त हो गई थी और अपना शरीर, गुण तथा घर सभी छोड़ दिया । मैं एक ही चरण से खड़ी रही चाहे पाला पड़ता हो, चाहे गरमी हो अथवा मेह बरसा हो । मैंने अपनी मूल शाखा तथा पत्र सभी कुछ छोड़ दिया और चिंता करके शरीर को सुखा डाला । अग्नि में जलते हुए भी मेरा मन दूसरी ओर नहीं गया और विकट छेद बनाते समय (जो पीड़ा हुए उससे भी) मैं विमुक्त नहीं हुई । तुम मुझे “वांसरी” कह-कह कर क्या बक रही हो और क्यों तमोगुणी क्रोध दिखला रही हो । (सूरदास कहते हैं) वंशी ने कहा, तुम भी इसी प्रकार से श्यामसुन्दर को रिझा कर अधार-रस को प्राप्त कर लो ।

अलंकार—सहोक्ति, पुनरुक्ति-प्रकाश ।

देखियत कालिन्दी.....भई हमारी ।

शब्दार्थ :—कालिन्दी = यमुना । विहर ज्वरकारी = विरह के बुखार में जनने से काली हो गई है । पर्यंक = पलंग । तरंग तलक = शरीर में तरंगों रूपी तड़पन उठती है । तट बार उपचार-चूर = तट की बालू ही उपचारों का चूर्ण है । प्रसेद पनारी = पसीने की पनारी । बिगलित = रुखे-सूखे । कचवाल । पुलिन = किनारा । मिस = बहाना । व्याज = बहाना ।

प्रसंग—गोपियाँ अपनी विरह-दशा का वर्णन कर रही हैं—

व्याख्या :—कालिन्दी । यमुना जिसका रंग काला माना गया है) और भी काली दिखाई दे रही है । हे पथिक । उन हरि से कहना कि वह आपके विरह-ताप के कारण पीड़ित हो रही है । मानों पलंग से पृथ्वी पर गिर पड़ी है और यमुना की तरंगें ही मानों उसकी तड़पन है । किनारे की बालू ही मानों उपचार का चूर्ण है और जलमानी पसीना बन कर पनारी के रूप में बह रहा है । पुलिन के कुशकास ही मानों उसके बिखरे हुए केश हैं और कोचड़ ही उसकी मलिन साड़ी है । भँवरों के रूप में वह विभिन्न दिशाओं में दीन-दुखी होकर डोलती-फिरती है । रात-दिन जो चकवी बोलती है सो चकवी नहीं है बल्कि चकवी के बहाने उसके रूप में यमुना ही सज्जिपात में बक रही है जो कृष्ण के प्रेम में उन्मादिनी

हो गई है । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु ! जो गति आपके वियोग में यमुना की हो गई है, वही गति हमारी (गोपियों की) हो गई है ।

काव्य सौंदर्य १—विप्रलम्भ शृंगार, उन्माद की अवस्था ।

२. अलंकार—मानवी करण रूपक, उत्प्रेक्षा, कैतावापन्हुति उदाहरण ।

सखी इन नैननु.....गिरिवर-धर प्यारे ।

प्रसंग—एक गोपी अपने विरह का वर्णन दूसरी से कर रही है ।

व्याख्या—हे सखी ! इन नेत्रों से तो बादल भी पराजित हो गये हैं । यह नेत्र तो बिना वर्षा-ऋतु के ही बरसते रहते हैं और इसी कारण दोनों तारे मलीन हो गए हैं । ऊर्ध्व-श्वास रूपी वायु अति तीव्रता से चल रही है, जिसने बहुत से सुख-रूपी वृक्षों को गिरा दिया है । दिशाओं में बनाकर, वचन रूपी पक्षी बस गये हैं जो पावस ऋतु के द्वारा पीड़ित हैं अर्थात् यहाँ ऊपर को चलती हुई साँस को वायु तथा सुखों को वृक्ष का रूप रिया गया है, साथ ही पावस ऋतु अर्थात् रुदन के कारण मीठे बोल भी नहीं निकल पा रहे हैं तो कौन किसे धीरज । आँसूओं की बूँदें दुतक-दुलक कर चोली पर गिरती हैं जो काजल के संयोग से काली बन जाती हैं, मानों शिवजी की पर्णकुटी के मध्य-श्याम धारा बह रही है । यह नेत्र श्री कृष्ण का स्मरण कर-कर के व्यथित होकर जल बहाते हैं अथवा वे बादल तो गरज-धरज कर जल बरसाते हैं और हमारे नेत्र स्मरण करके आँसूओं की जल-धारा बहाते हैं । सूरदास कहते हैं कि झूबते हुए ब्रज को भला बिना प्रिय गिरधारी के कौन बचा सकता है ।

काव्य सौन्दर्य—१ विभावना, सांग रूपक, विनोक्ति ।

२—विप्रलम्भ शृंगार ।

उपमा नैन.....संग न छाँड़त ।

प्रसंग—कृष्ण के वियोग में गोपियाँ अपनी विह्वलता व्यक्त कर रही हैं ।

व्याख्या—नैनों के लिए जो दी जा सके ऐसी उपमा कोई भी शेष नहीं रही अर्थात् नेत्रों की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती है। योंतो कवि-जन पूर्वापर से कहते-कहते चले आये हैं परंतु किसी ने भी होश में आकर, अच्छी तरह से नहीं कहा है। नेत्रों को कवियों ने चकोर बताया तो यह वहाँ उड़ कर क्यों नहीं पहुँच जाते ? श्री कृष्ण के मुख-कमल रूपी कोष से विलग होकर यह निकम्मे यहाँ क्यों ठहरे हुए हैं। यदि इनकी समानता हिरन से की जाती है तो इनके वध करने के हेतु उद्धव यहाँ आये हैं तो यह मृग होकर भागते क्यों नहीं हैं ? अधिक को देख भाग कर, घने जंगल में क्यों नहीं चले जाते जहाँ कोई आघात नहीं कर सकता। यदि यह हृदय का आकर्षण करने वाले खँजन ही हैं तो भी प्रेमी होकर ये अकड़ते क्यों नहीं हैं ? पंख फैलाकर उड़ क्यों नहीं जाते हैं, कामदेव के पास क्यों बिके जाते हैं ? इनमें प्रेम किसी प्रकार से नहीं है। इन्हें व्यर्थ ही का आश्रय कहा जाता है। सुरदास कहते हैं कि नेत्रों की उपमा मछली से कुछ-कुछ दी सकती है क्योंकि वह गी जल को नहीं छोड़ती है और ये भी आँसुओं का साथ नहीं छोड़ते हैं अथवा आँसुओं में डूबे रहते हैं।

काव्य-सौंदर्य—१ रस विप्रलंभ शृंगार ।

२ अलंकार—पुनरुक्ति प्रकाश, अपन्हुति, अनुप्रास उपमा ।

मोहन माँग्यो...रंक को, भूप ।

प्रसंग—गोपिवाँ उद्धव से कह रही है ।

व्याख्या :—(उद्धव ने कहा, मोहन ने अपना स्वरूप तुम से वापस माँगा है। इस ब्रज में रहकर तुम उसे पीकर बैठ गई हो। तो गोपियों ने प्रति उत्तर में कहा, मेरा मन तथा मेरा सुख और मेरे नेत्रों को जो ले गये, सो सभवतः अब हमसे उसका बदला लेना चाहते हैं छल करके तभी (वचन) बाण लेकर (उद्धव) इधर को दौड़ आये हैं। सुरदास कहते हैं कि अपना काम ठीक करके (राज्य पाकर) हमें अब कुआँ दिखा रहे हैं (योग रूपी कुएं में ठकेल रहे हैं) यह तो लेन-देन की बात है (यदि वे हमारा मन ले गये तो हमने भी उनका स्वरूप हृदयंगम कर लिया है)

इसमें न कोई राजा है और न रङ्ग (श्यामसुन्दर राजा हो गये हैं तो क्या इसी कारण वे हमारा मन नलौटा कर अपना मन वापस चाहते हैं ?)

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

ऊधो, अब यह...तौ न गई ॥

प्रसंग—गोपियाँ उद्वेग से कोप करती हुई कह रही हैं—

शब्दार्थ—न्याय=उचित । कुन्तल=केश । भुरै लई=बहका ली । मालति=नायिका, चमेली । गहरू=विलम्ब । निरस भई=रसहीन हो गई । इंदु=चंद्र । सम्पुट तजि=प्रफुल्लित होकर । करखें ते न नई=आकर्षण की अवहेलना नहीं की । हेम इई=पाले से मार डाला । छिजई नष्ट करदी । विवेकहीन=बुद्धि रहित ।

अर्थ—हे उद्वेग ? अब यह बात हमारी समझ में आ गई कि नंदनंदन श्री कृष्ण के अंगों की जो उपमा (विभिन्न वस्तुओं से) कवियों ने दी वह ठीक है । केशों (कुन्तल) को कुटिल भंवरे के समान बताया गया है तभी तो भ्रमर के समान गोपियाँ मालती की परिक्रमा करके उनको मोहित कर लिया । परंतु उनको त्यागते हुए भी देर नहीं की । कपटी ने जब उनकी नीरस जाना तभी छोड़ दिया मुख की उपमा चंद्रमा के समान दी गई है प्रफुल्लित होकर कुमुदिनी ने उसके आकर्षण की अवहेलना नहीं की अर्थात् प्रेम किया । परंतु निष्ठुर ने स्नेह को रक्षा नहीं की, अंत में कुमुदिनी (गोपियों) को पाला (वियोग) डालकर मार डाला । रात-दिन शरीर से घनश्याम की सेवा की और उनका नाम रट-रट कर जीम को चीर कर दिया । सूरदास कहते हैं कि अज्ञानी चातक के समान प्रेम करने पर भी तो मुख में एक बूंद भी नहीं गई (यदि विवेक से काम लेते तो ऐसा नहीं होती) ।

अलंकार—अनुप्रास, पुनर्वक्ति प्रकाश, रूपक ।

दूर करहि...करिवौ ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका विरह-व्यथा को शांत करने के लिए वीणा वादन प्रारम्भ करती है । वीणा के सुन्दर शब्द से मोहित होकर

रत्नि ही नहीं ढलती । प्रस्तुत पद में सूर इसी तथ्य का ।
पल्लवन कर रहे हैं—

व्याख्या—हे सखी ! वीणा-वादन बंद कर दो । देख, तेरी वीणा के मधुर शब्द से चंद्रमा के रथ में जुते हुए हिरण्य मोहित होकर रुक ये हैं । इसमें चंद्रमा का रथ आगे नहीं बढ़ता और रात्रि जहाँ की तहाँ ठहर गई है ।

विरहिणी उत्तर देती है कि हे सखी ! तू मेरी व्यथा को जाने । जिस पर बीतती है वही जानता है । सखी ! तू नहीं जानती कि प्रेम के बंधन में पड़ना कितना कठिन है । जब से मेरे प्राणनाथ मुझसे विलग हुए हैं तब के मेरे नेत्रों से अश्रु का प्रवाह बंद नहीं होता । तू जो मेरी व्यथा दूर करने के लिये चंदन का लेप करती है वह मुझे अग्नि के समान जला रहा है । मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ । कमल-नेत्र कृष्ण के वियोग में मुझे कुछ भी नहीं सुहाता, तेरे समस्त प्रयत्न व्यर्थ जायंगे ।

विशेष—उपर्युक्त भावों से मिलती हुई जायसी की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

कलप समान रैनि तेहि वाढ़ी ।

तिल-तिल भर जुग-जुग जिम गाढ़ी ।

गहै वीन मकु रैनि बिहाई ।

सीस-बाहन तंह रह ओनाई ॥

पुनि धनि सिंह उरेहै लागै ।

एसहि बिथा रैनि सब जागै ॥

काव्य सौन्दर्य १—रस—विप्रलम्भ शृंगार-उम्माद कि विरहावस्था

५—अलंकार मानों मृगा मोहे में उत्प्रेक्षा, नैन-नरि मैंने वर्ण की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास, चंद्र की समता अग्नि से होने के कारण उपमा ।

मधुकर हम""अनुरागी ।

प्रसंग—कृष्ण के मित्र उद्धव गोपियों को योग का उपदेश देते हैं। गोपियों को यह नहीं रुचता, वे कृष्ण के प्रति, अपनी प्रेम-निष्ठा प्रकट करती हुई योग का उपहास करती हुई उद्धव को उत्तर देती हैं—

व्याख्या—हे मधुकर (उद्धव) ! हम वे बेले नहीं हैं जिनको छोड़कर तुम्हारे मनमोहन श्यामसुन्दर भ्रमर की तरह एक बेल का रस लेकर दूसरी पर चले जाते हैं। वे दूसरी ही होंगी जो तुम्हारे बहकावे में आ जावें। हम गोपियों ने तो एकनिष्ठ होकर कृष्ण को प्रेम किया है। वचन से ही प्रिय कृष्ण ने प्रेम-वारि से खींचकर अपने हाथों से पोषण किया हो किंतु अब वे नहीं हैं। उनके अभाव में प्रातःकाल फूलना पड़ता है अर्थात् उनके वियोग में दिन पर दिन व्यतीत होते जा रहे हैं। इस प्रकार क्रमशः स्नेह की हानि हो रही है।

हम विरहिणी गोपियाँ रूपी बेलें वृन्दावन में कृष्ण रूपी तमाल पेड़ से लिपटी हुई हैं और हमारे प्रेम के पुष्पों के रस और सुगन्धि को गोपाल मधुप होकर विलसते हैं। मुझ बेलों के समीप में कृष्ण के सौंदर्य की इतनी दृढ़ रूपी की डाल लगी हुई है कि तुम्हारे योग की समीर भी उसको हिला-डुला नहीं सकती। हम सभी कृष्ण में पूर्णरूप से अनुरक्त हो चुकी हैं। उनका प्रेम-पराग क्षण मात्र को भी हृदय से दूर नहीं होता।

विशेष—सरल युक्तियों से गोपियों के द्वारा सूर ने योग का विरोध करारकर प्रेम-भक्ति को अनुमोदन कराया है।

काव्य-सौन्दर्य—१—रस विप्रलम्भ शृंगार।

अलंकार—‘हम न.....बेली’ में ‘ककुवक्रोक्ति’ ‘करत कुमधु’ में ‘क’ वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास, बिनु प्रिय में विनोक्ति, बेलों उपमान के द्वारा उपमेय गोपियों का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति, ‘श्याम में तमाल’, प्रेम में पुद्गु गोपाल में मधुप का आरोप होने से रूपक, जोग समीर रूपक की पुष्टि रूप-डार से होने के कारण परंपरित रूपक है।

उधो करि..... होई।

ते हैं।

प्रकट

गोडकर

लेकर

में आ

। वच-

किया

इता है

प्रकार

ल पेड़

न्धि को

कृष्ण के

योग की

र्णरूप से

से दूर

विरोध

प्रसंग—उद्धव गोपियों को योग का उपदेश देते हैं वह उनको नहीं सुहाता। वे अपने भोले और सरल कथन में उद्धव के योग से अनभिज्ञता प्रकट करती हुई कह रही हैं।

व्याख्या—उद्धव जी! तुम मुझको योग का यह नया कौन-सा उपदेश दे रहे हो। हम तो पहले ही से 'योग' कर रही हैं। तुम हमारे भोग (सुख) को देखकर दुराग्रह करते हुए व्यर्थ का विवाद क्यों कर रहे हो। तुम्हीं बताओ कि हम में योग की कौनसी कमी है। सिर के उलझे हुए हमारे केश ही योगियों के सिर पर सेली के समान है कानों की खुभी ही योगियों के पहनने की मुद्रा है। हम सभी ने विरह-भस्म चढ़ाकर अपने चीरों का कंथा बना लिया है। हृदय में अविराम कृष्ण की मुरली बजती है वही गोपियों का सिंगी बाजा है। कृष्ण के दर्शन की भिन्ना पाने के लिए हमारे नेत्र रूपी खप्पर सदैव हो तैयार रहते हैं। एक ही अभिलाषा है कि दीनानाथ कृष्ण आकर दर्शन की भिन्ना दें।

हे उद्धव! इस प्रकार योग करने में जो बातें होती हैं वे तो सभी हमारे पास हैं फिर तुम मुझसे कौन सा योग करने को कहते हो। वह दूसरा योग किस प्रकार हो सकता है।

विशेष—१—प्रेमाभक्ति के समस्त योग-साधना का सरल शब्दों में खंडन कराया गया है।

२—रस विप्रचम्भ शृंगार।

३—अलंकार—सांग रूपक।

ऊधो भली.....कर लाये।

शब्दार्थ—कुलाल = कुम्हार। अठा = छप्पर। अँवा = जिसमें कुम्हार वर्तन पकाता है।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हम सभी कृष्ण के वियोग में वैसे ही दुखी हो रही थीं। जो कुछ कमी थी वह तुमने आकर पूरी कर दी।

व्याख्या—हे उद्धव ! तुमने यहाँ आकर हमारा अत्यन्त उपकार किया । ब्रह्मा रूपी कुम्हार ने हमारे रूप में कच्चे घट तैयार किये थे, उनको तुमने आकर पका दिया । प्यारे कृष्ण ने इनके ऊपर रंग देकर भौंति भौंति चित्रों से इनको सँवारा था । यद्यपि हमारे नेत्रों से अविराम रूप से अश्रु धारा प्रवाहित होती रही, किन्तु कृष्ण के आने की अवधि—कि वे कुछ दिनों में लौट आवेंगे अटा (छप्पर) बट गई । इसलिए ये घट अविरल अश्रु धारा से भी नहीं गले ।

मैंने इन घटों को भली प्रकार से पकाया । ब्रज को अवा (भट्टा) बनाकर उसमें योग का ईधन रखा और उसे प्रियतम कृष्ण की स्मृति रूपी अग्नि से प्रज्वलित किया । विरह जनित उसासों की पूँक से अवा में प्रज्वलित अग्नि का जोर अधिक प्रदीप्त किया तथा कृष्ण के दर्शन की आशा से इनको फिराया (कुम्हार घड़े उलटता रहता है, जिससे कि वे एक ही तरफ से काले न हो जाँय) । ये घड़े अब कृष्ण के प्रेम जल से पूरी तरह से भर चुके हैं और किसी ने भी इनका स्पर्श नहीं किया है । कृष्ण राज-काज से मथुरा चले गये हैं किन्तु ये घड़े उनके लिये ही सुरक्षित हैं ।

विशेष—१—विप्रलम्भ शृंगार

२—सांगरूपक ।

तुलसी दास

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—तुलसी काव्य में भावुकता (भाव-पक्ष की परीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“तुलसी रस सिद्ध कवि थी” इस कथन की समीक्ष्य कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“कवि की पूर्ण भावुकता इसी में है कि प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को ढाल कर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे ।”

उपयुक्त कसौटी पर तुलसी के भाव पक्ष (भावुकता) की परीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ हम गोष्वासी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य देखते हैं, उतने अधिक रूपों के साथ हिन्दी भाषा के अन्य किसी कवि का नहीं” इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

उत्तर—काव्य के भावपक्ष में भाव और विभाव दोनों ही आते हैं क्योंकि भाव निरालम्ब नहीं होते हैं। भावों के जाग्रत करने की शक्ति विभाव में होनी आवश्यक है, नहीं तो भाव ‘धुंआँ के से धौरहर’ (धुआँ के से महल) की भाँति निराधार रह जाते हैं। विभाव उसे कहते हैं जो भाव को विशेष रूप से उत्पन्न करता है। इसके दो अंग होते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। भाव की जाग्रति के मुख्य कारण को आलम्बन कहते हैं और सहायक कारण को उद्दीपन। तुलसी के काव्य के प्रधान आलम्बन मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। रामचरितमानस की सारी कथा उन्हीं के सहारे अग्रसर होती है। तुलसी के राम ‘विधि हरि शम्भु नचावन हारे’ ब्रह्म और विष्णु (त्रिदेवों में श्रेष्ठ और रक्षक एवं पालक होने के कारण) दोनों के ही अवतार हैं। लेकिन वे भक्तों के हित के लिए मानव लीला करते हैं। तुलसी ने केवल अपनी गवाही से ही नहीं वरन् राम के उदात्त गुणों द्वारा उनके नरत्व में नारायणत्व की भाँकी दिखा दी है।

काव्य उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए आलम्बन में उदात्त गुणों की आवश्यकता होती है। तुलसी ने अपने चरित नायक-सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियों में विकसित होने वाले शील के विभिन्न अंगों और रूपों की भाँकी दिखलाकर जनता को सीधे उपदेश द्वारा नहीं वरन् सजीव उदाहरण द्वारा शिक्षा दी है, इसलिए उनका काव्य ‘स्वान्तःमुखाय’ होते हुए भी ‘लोकहिताय’ बन गया है। तुलसी का सार भावपक्ष राम और उनके परिवार के शील, शक्ति और सौन्दर्य के दैवी गुणों के उद्घाटन में प्रसारित हुआ है। परिस्थितियों के अनुकूल ही भावों का समावेश हुआ है और जीवन के विभिन्न सम्बन्धों और उनकी पृथक पृथक मर्या-

दाश्यों का पूरा-पूरा निर्वाह हुआ है। पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित जितनी भाव-सम्पत्ति हमको मानस के अयोध्या-काण्ड में मिलती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। कैकेयी भी, जब तक मंथरा द्वारा उसे पाटी नहीं पढ़ाई जाती है, पारिवारिक संगठन और शान्ति को भंग नहीं करती। वह मंथरा के फंदे में सहज में नहीं आती। मंथरा भी 'गिरा गई मति फेरि' के कारण दुष्टता धारण करती है। राम माता खुशी से वन गमन की आज्ञा देती हैं, किन्तु थोड़े मानसिक संवर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के साथ 'धरम सनेह उभय मति घेरी। भई गति सौँप छुछँदरि केरी' जब 'घोर धरि मारी' आज्ञा देती है तब पूरी उदारता के साथ—'पितु आयसु सब धर-मकटोका' किन्तु फिर योग, आदर्श और यथार्थ का संवर्ष होता है; और आदर्श की विजय होती है:—

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जहु जनि बड़ि माता ॥

जौं पितु मातु कहेउ धन जाना । तौ कानन सत अवध समना ॥

'तौ जनि जाहु जानि बड़ माता' में यथार्थ की झलक है। माता अपने पुत्र को जाने नहीं देना चाहती, किन्तु दूसरी उद्दाली में आदर्श की विजय होती है। सुमित्रा भी इसी उदात्त स्वर में लक्ष्मण को विदा देती है:—

'अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥

तुम्हरेहि भाग राम वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥'

सीता और राम का वार्तालाप दूसरा धर्म और स्नेह का संवर्ष है वहाँ संकोच दोनों ओर है। वहाँ स्नेह पतिव्रत धर्म का बल पाकर विजयी होता है। अंत में दशरथजी असमंजसपूर्ण अर्द्ध मौन विदा में आदर्श और यथार्थ का धर्म और स्नेह का संवर्ष है (दशरथ का वात्सल्य विश्वामित्र के आगमन पर जनकपुर से दूत आने पर उभार में आ चुका है उसकी अन्तिम शोकमय परिणति राम-वन-गमन समय पर होती है) वन-गमन-समय श्री रामचंद्रजी को यही चिन्ता रहती है कि उनके पीछे राजा, रानी और परिजन दुखी न हों। 'सोई सब भौंति मोर द्वितकारी जेहि तैं रहइ भुआल सुखारी।' 'मातु सकल मोरे विरह जेहि

न होहि दुखदीन' । तुलसी ने मार्मिक स्थलों को पहचाना था । उन स्थलों के चित्रण के कारण ही उनका काव्य इतन मर्मस्पर्शी बन सका । फिर भरतकी आत्मलानि के दृश्य हमको दिखाई पड़ते हैं भरत जी भ्रतृ-भक्ति के आदर्श हैं । राज्य-लक्ष्मी को दोनों ही ठुकराते हैं । दोनों ही बनवासी बनते हैं । चित्रकूट में तो पारिवारिक जीवन की पुनीत भागीरथी प्रवाहित होने लगती है । कौशल्या को उदारता का एक बार फिर परिचय मिलता है । दशरथ और जनक दोनों के परिवार मिलते हैं और सोता जी के लिए 'पुत्रपवित्र किये कुल दोऊ' की उक्ति सार्थक होती है । चित्रकूट के पश्चात् सीता हरण के पश्चात् राम का मानव रूप दिखाई पड़ता है । फिर वीरता और क्रोध के स्थल आते हैं । लक्ष्मण के शक्ति लगने पर एक बार फिर मानव रूप में दिखाई देते हैं । इस प्रकार रामायण में अनेकों भावपूर्ण स्थल हैं और तुलसी ने उनको पूरी तौर से निभाया है ।

रस—तुलसी की रस श्रृष्टि भी इन दैवी गुणों के आश्रित है और वह उनके चरित्र-चित्रण से समन्वित है । हमारे यहाँ चरित्र चित्रण भी विभाव से सम्बन्धित होने के कारण रस का अंग बन गया है । हास्य कहीं शृंगार का सहायक हुआ है और कहीं वीर का । कर्ण रस भी शील पर अवलम्बित है क्योंकि कर्ण में परदुःखकातरना अधिक रहती है । वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स शक्ति के आदर्श हैं । शान्त में सभी गुणों का आधार है किन्तु शील से उसका विशेष सम्बन्ध है । तुलसी ने प्रायः सभी रसों की सृष्टि की है, किन्तु सारी कथा भगवान् की लीला का रूप होने के कारण उनके सभी रस एक प्रकार से शान्त अथवा भक्ति रस के आधीन हैं ।

शृंगार रस—तुलसी के मर्यादावाद के कारण यह रस कुछ गोण स्थान पाते हुए भी कवि की कलम के जादू के कारण अपना रस-राजत्व प्रमाणित कर देता है । तुलसी ने काव्य की परम्परा का प्रतिपालन करते हुए पुष्प काटिका के दृश्य के ससारे पूर्वराग की छटा दिखाई है । इसमें वे प्रसन्न रागधर से प्रभावित हैं किन्तु उसमें भी मर्यादा को वे अवगणन रखते हैं । रामचंद्रजी पुष्पवाटिका में जाते हैं किन्तु वहाँ भी वे मर्यादा

का पूर्ण पालन करते हैं। मालियों से पूछे बिना फूल नहीं तोड़ते हैं—
 'चहुँदिसि चितइई पूंछि माली गन । लगे लेन दल फूल मुदित मन' गुप्त की
 पूजा के लिए फूल चुनने में वे इतने दत्तचित्त रहे कि सीता के आगमन
 की खबर भी उनको 'ककन किंकन नूपुर धुनि' (ये शब्द स्वयं ध्वन्यात्मक
 और संगीतमय हैं) से ही लगती है। वे सीताजी की ओर टकटकी
 लगाकर देखते हैं किन्तु तुलसी ने वहाँ भी एक पौराणिक कथा के सहारे
 टकटकी की व्याख्या करते हुए मर्यादा का निर्वाह कर दिया है:—

'अस कहि फिर चितए तेहि ओरा ।

सिय मुख ससि भये नयन चकोरा ॥

भये विलोचन चार अचंचल ।

मनहुँ सकुचि निमि तजे हगंचल ॥'

ऐसा पौराणिक विश्वास है कि जनकजी के पूर्व पुरुष राजा निमि
 पलकों पर वास करते हैं। उनके ही कारण पलक मारने की क्रिया
 होती है और उनके ही नाम पर पलक मारने के समय को निमिष कहते
 हैं। रामचन्द्र जी सीता जी को देख रहे हैं वहाँ जनक जी के पूर्व पुरुष
 किस प्रकार ठहर सकते हैं। मानो इसीलिए उनका पलक मारना बन्द
 हो गया है। सौन्दर्य-दर्शन की अविरल चाह के साथ मर्यादा का भी
 पूर्णतया पालन हो गया है। श्री रामचन्द्रजी सीता के सौन्दर्य से प्रभावित
 हैं किन्तु मन की पवित्रता नहीं खोई है। 'बोले सुचि मन अनुज सब वचन
 समय अनुहारि'।

आगे देखिए :—

'तात जनक तनया यह सोई ।

धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥

पूजन गौरि सखी लेइ आई ।

करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ॥'

'करत प्रकासु फिरइ फुलवाई'—इन चार शब्दों में गोस्वामी जी
 ने सीताजी के सौन्दर्य का भरपूर वर्णन कर दिया है। 'फिरइ फुलवाई'
 में तो सौन्दर्य के लिए जैसे वातावरण की आवश्यकता थी वैसा वातावरण

उपस्थित कर दिया गया है। 'करत प्रकास' में सीता के सौन्दर्य और रामजी के मन पर पड़े हुए प्रभाव दोनों का ही वर्णन आ गया है। इतना मन विचलित होने पर तुलसीदास जी ने मति संचारी (आत्मनिश्चय) द्वारा मर्यादावाद की स्थापना कर दी है। कालिदास के शकुन्तला नाटक में दुष्यन्त भी ऐसी ही बात कहते हैं। वे संदेह के स्थानों में अन्तःकरण की ही वृत्ति को प्रमाण मानते हैं—'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः' मानस में रामचंद्र जी कहते हैं :—

'जामु विलोक अलौकिक सोभा ।

सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

सो सब कारन जान विधाता ।

फरकहि सुभग अंग सुन भ्राता ॥

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।

मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ ॥'

सारे दृश्य में सखियों की उपस्थिति औचित्य और मर्यादा के अर्थ ही रखी गई है।

वियोग शृंगार के हम सीता-हरण के पश्चात् बहुत सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। श्री रामचंद्रजी की उन्माद दशा वियोग पर शान चढ़ा देती है :—

'लक्ष्मिन समुभाये बहु भाँती ।

पूछत चले लता तरु पाँती ॥

हे खग-मृग, हे मधुकर-खेनी ।

तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥'

'मेघदूत' में ठीक ही कहा है :—

'कामर्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाश्चेतनेषु ।'

सीताजी के लंका पहुँच जाने पर हनुमानजी द्वारा विरह के संदेशों का जो विनिमय हुआ है वह बड़ा मार्मिक है। हनुमान जी रामजी का संदेश कहते हैं :—

का पूर्ण पालन करते हैं। मालियों से पूछे बिना फूल नहीं तोड़ते हैं—
 'चहुँदिसि चितइई पूछि माली गन । लगे लेन दल फूल मुदित मन' गुरु की
 पूजा के लिए फूल चुनने में वे इतने दत्तचित्त रहे कि सीता के आगमन
 की खबर भी उनको 'ककन किंकन नूपुर धुनि' (ये शब्द स्वयं ध्वन्यात्मक
 और संगीतमय हैं) से ही लगती है। वे सीताजी की ओर टकटकी
 लगाकर देखते हैं किन्तु तुलसी ने वहाँ भी एक पौराणिक कथा के सहारे
 टकटकी की व्याख्या करते हुए मर्यादा का निर्वाह कर दिया है:—

‘अस कहि फिर चितए तेहि ओरा ।

सिय मुख ससि भये नयन चकोरा ॥

भये विलोचन चारु अचंचल ।

मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ॥’

ऐसा पौराणिक विश्वास है कि जनकजी के पूर्व पुरुष राजा निमि
 पलकों पर वास करते हैं। उनके ही कारण पलक मारने की क्रिया
 होती है और उनके ही नाम पर पलक मारने के समय को निमिष कहते
 हैं। रामचन्द्र जी सीता जी को देख रहे हैं वहाँ जनक जी के पूर्व पुरुष
 किस प्रकार ठहर सकते हैं। मानो इसीलिए उनका पलक मारना बन्द
 हो गया है। सौन्दर्य-दर्शन की अविरल चाह के साथ मर्यादा का भी
 पूर्णतया पालन हो गया है। श्री रामचन्द्रजी सीता के सौंदर्य से प्रभावित
 हैं किन्तु मन की पवित्रता नहीं खोई है। ‘बोले सुचि मन अनुज सब वचन
 समय अनुहारि’।

आगे देखिए :—

‘तात जनक तनया यह सोई ।

धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥

पूजन गौरि सखी लेइ आई ।

करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ॥’

‘करत प्रकासु फिरइ फुलवाई’—इन चार शब्दों में गोस्वामी जी
 ने सीताजी के सौन्दर्य का भरपूर वर्णन कर दिया है। ‘फिरइ फुलवाई’
 में तो सौंदर्य के लिए जैसे वातावरण की आवश्यकता थी वैसा वातावरण

उपस्थित कर दिया गया है। 'करत प्रकाश' में सीता के सौन्दर्य और रामजी के मन पर पड़े हुए प्रभाव दोनों का ही वर्णन आ गया है। इतना मन विचलित होने पर तुलसीदास जी ने मति संचारी (आत्मनिश्चय) द्वारा मर्यादावाद की स्थापना कर दी है। कालिदास के शकुन्तला नाटक में दुष्यन्त भी ऐसी ही बात कहते हैं। वे संदेह के स्थानों में अन्तःकरण की ही वृत्ति को प्रमाण मानते हैं—'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः' मानस में रामचंद्र जी कहते हैं :—

'जासु विलोक अलौकिक सोभा ।

सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

सो सब कारन जान विधाता ।

फरकहिं सुभग अंग सुन आता ॥

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।

मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ ॥'

सारे दृश्य में सखियों की उपस्थिति औचित्य और मर्यादा के अर्थ ही रखी गई है।

वियोग शृंगार के हम सीता-हरण के पश्चात् बहुत सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। श्री रामचंद्रजी की उन्माद दशा वियोग पर शान चढ़ा देती है :—

'लङ्घिमन समुक्ताये बहु भौंती ।

पूछत चले लता तर पौंती ॥

हे खग-मृग, हे मधुकर-खेनी ।

तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥'

'मेघदूत' में ठीक ही कहा है :—

'कामर्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाश्चेतनेषु ।'

सीताजी के लंका पहुँच जाने पर हनुमानजी द्वारा विरह के संदेशों का जो विनिमय हुआ है वह बड़ा मार्मिक है। हनुमान जी रामजी का संदेश कहते हैं :—

‘कहेहु कछू तैं दुख घटि होई ।
 काहि कहउँ यह जान न कोई ।
 तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
 जानत प्रिया एक मन मोरा ।
 सो मन रहत सदा तोहीं पाहीं ।
 जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं ।
 प्रभु संदेसु सुनत वैदेही ।
 मगन प्रेम तनु सुधि नहिं तेही ॥’

सीताजी का संदेश और भी मार्मिक है :—

‘अवगुन एक मोर मैं माना ।
 विछुरत प्रान न कीन पयाना ॥
 नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा ।
 निसरत प्रान करहिं दृढ बाधा ॥
 विरह अग्निनि तनु तूल समीरा ।
 स्वास जरह छुन मौँह सरीरा ॥
 नयन खवहिं जल निज हित लागी ।
 जरह न पाव देह विरहागो ॥’

सच्चे विरह में प्राण न रह सकते। सीताजी प्राण नहीं छोड़ सकी, इसको वे अपराध-रूप से स्वीकार करती हैं। किंतु वे अपने अपराध की सफाई भी देती हैं, वह यह कि शरीर के जलकर भस्म हो जाने के सब कारण उपस्थित हो जाने पर भी शरीर नहीं जलता है। इसका उत्तर-दायित्व नेत्रों पर है। विरह रूपी अग्नि है, शरीर सूई है, निश्वास हवा—है—जब अग्नि को प्रज्वलित करने वाली हवा भी मौजूद है तब शरीर जला क्यों नहीं इसका यह कारण है कि नेत्र-दर्शन के स्वार्थवश होकर जल की वर्षा कर देते हैं, इसलिए आग बुझ जाती है और शरीर बच जाता है। कितना काव्यमय कारण है ! दिन-रात रोते रहने की भी व्यंजना हो जाती है।

बीर रस—

“रघुवंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई ।

तिहि समाज अस कहइ न कोई ॥

कही जनक जसि अनुचित बानी ।

विद्यमान रघुकुल-मनि जानी ॥

सुनुहु भानुकुल-पंकज-भानू ।

कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥

जौ तुम्हार अनुसासन पावउं ।

कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावऊं ॥

काँचि घट जिमि डारउं फोरी ।

सकउं मेर मूलक इव तोरी ॥

तव प्रताप महिमा भगवाना ।

का बापुरो पिनाक पुराना ॥”

इसमें उत्साह आदि से अन्त तक है । गर्व (‘रघुवंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई’), घृति (‘कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू’) आदि संचारी है ।

भयानक रस—तुलसीदास जी ने लंका-दहन के कारण उत्पन्न भय से राज्ञसों और राज्ञसियों में खलबली मच गई थी उसका बड़ा सजीव वर्णन कवितावली में आया है :—

× × ×

लपट कराल ज्वाल जालमाल दहूँ दिसि,

धूम अकुलानै पहिचानै कौन काहि रे ?

पानी को ललात, विललात, जरे जातगात,

परे पाइमाल जातु भ्रातु ! तू निवाहिरे ।

प्रिया तू पराहि, नाथ, नाथ ! तू पराहिरे ।

तुलसी विलोकि लोग व्याकुल विहाल कहैं ।

“लेहि दस सीस, अब बीस चख चाहिरे ॥”

बानरों से यातुधानियाँ इतनी भयभीत हो गई थीं कि उनको चारों ओर बानर ही दिखाई पड़ते थे ।

अध ऊर्ध्व बानर, विदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए,
मूँदे आँखि हीय में, उधारे आँखि आगे ठाढ़ो

‘लपट कराल’.....‘दिसि’, यह आलम्बन है, ‘पानी को ललात, बिललात, परे पाइ माल जात, भ्रात तू ! निवाह रे पराहिरे आदि पुकार अनुभव है। ‘व्याकुल विहाल द्वारा विषाद संचारी घोषित होता है। ‘लेहि दस सीस, अब बीस चख चाहिरे’ में उनके हृदय का आमर्श और रावण को प्रबोधित करने की इच्छा व्यंजित है। ये सञ्चारियों के अन्तर्गत समझी जायगी। ‘मूँदे आँखि हिय में’ यह भ्रम संचारी है।

शान्त रस—वैसे तो तुलसी की सभी रचनाएँ शांतरस का ही उदाहरण हैं, क्योंकि उनके मूल में भक्ति-भावना है किंतु ‘विनयपत्रिका’ और ‘कवितावली’ के उत्तरकाण्ड में शुद्ध शांतरस ही है। शृङ्गार-प्रधान ‘बरवै रामायण’ के उत्तरकाण्ड में भी शांत रस है। संसार की अनित्यता की ओर ध्यान दिलाने वाला पश्चात्ताप-प्रधान नीचे का पद देखिए :—

‘मन पछितैहै अवसर बीते ।

दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन, अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसवदन आदि वृष, बचे न काल बली ते ।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सबही ते ।
अंतहुँ तोहि तजैगे पामर ! तू न तजै अव ही ते ॥
अब नाथहि अनुरागु जागु जइ, त्यागु दुरासा जी ते ।
भुझै न काम-अग्नि तुलसी कहूँ, विषय-भोग बहु घी ते ॥’

इसमें निर्वेद स्थायी भाव है और संसार की अनित्यता देखकर ज्ञानजन्य वैराग्य का उपदेश है। इसमें वैराग्य और विवेक के लिए युक्तियाँ होने से वितर्क संचारी भी है। ‘विनयपत्रिका’ में दैन्य के अच्छे-अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

‘द्वार हैं भीर ही को आज ।

रटत रिरिहा आरि औरि न कौर ही ते काज ॥

+

+

+

दीनता दारिद दलै को कृपा-वारिध बाज ।

दानि दसरथ राय के तुम वानइत-सिरताज ॥

जनम को भूखो, भिखारी हौ गरीब-निवाज ।

पेट भरि तुलसिहि जेंवाइए भगति-सुधा-सुनाज ॥’

शांतरस के अन्तर्गत संचारी रूप से हमको अद्भुत, रौद्र, वीर, वीभत्स के भी उदाहरण मिलते हैं। अद्भुत का उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

‘केसव’ कहि न जाइ का कहिए ?

देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिए ॥

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिन लिखा चितेरे ।

धोये मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय इहिं तनु हेरे ॥’

इसमें अद्भुत की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी पूर्ण भावुक रस सिद्ध कवो-श्वर थे। उन्होंने अपने को मानव-जीवन की प्रत्येक परिस्थित में ढाल कर भावों की मार्मिक व्यंजना की है। मानव वे भाव-जगत का तुलसी सा पारखी हिंदी में दूसरा कवि नहीं है।

प्रश्न २—तुलसी दास के कला-पक्ष की सम्यक् विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न—भाषा शैली और अलंकार योजना की दृष्टि से तुलसी के काव्य की समीक्षा कीजिये।

अथवा

प्रश्न—“तुलसी समन्वयकारी कवि थे। उन्होंने काव्य में प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया।” इस कथन की पूर्ण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—तुलसी का काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें प्रत्येक दृष्टि से समन्वय है। समाज हित; लोक हित और साहित्य आदि

प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय का रूप मिलता है । शैव-वैष्णव भक्ति, ज्ञान, ब्राह्मण, शूद्र, राजा-प्रजा नागरिक और वन के कोल-किरात के समन्वय के साथ काव्य कला में भी समन्वय है । परम्परा से प्रचलित सभी शैलियों का समन्वय तुलसी ने अपने काव्य में किया है—

१—चारण और भाटों की कवित्त-सवैया शैली में 'कविता बली है ।

२—कृष्ण-गीतावली, गीतावली और विनय पत्रिका जयदेव, विद्यापति और कृष्ण-भक्त कवियों की पद-शैली में है ।

३—निर्गुण संतों की शैली में दोहावली की रचना है ।

४—जायसी आदि सूफी कवियों की दोहा चौपाई पद्धति में तुलसी ने रामचरित मानस की रचना की ।

५—वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति कवितावली में मिल जाती है ।

६—रहीम की बरवै शैली में तुलसी ने बरवै रामायण को रचना की ।

तुलसी दास रस सिद्ध कवि थे । उनका भाव एवं कथा पक्ष पूर्णतया संकलित है । वे केशव की तरह भाषा में कविता करने में लज्जित नहीं होते थे । वे भाव के उपासक थे का भाषा का सत्कृत भाव चाहिए सोच ।” किंतु फिर भी उनके काव्य में रीति, गुण, अलंकार, लक्षण, व्यंजना आदि सभी गुण विन प्रयास के ही आ गये हैं । उनसे काव्य सौंदर्य में वृद्धि हुई है । पहले 'गुणों' को लिखिए—

माधुर्य—

‘तन मृदु मंजुल मेचकताई ।

भलकत बाल विभूषन भाँई ॥’

अधर पानि पद लोहित लोने ।

सर सिंगार भव सारस सोने ॥

श्रोत—इस गुण का सम्बन्ध रौद्र और वीर रस से है । इन रसों के आश्रय से कर्ण कटु दोष भी गुण बन जाता हैः—

‘कतहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरकलत ।

कतहुँ बाजि सों बजि, मर्दि गजराज करकलत ॥

इन दोनों उदाहरणों में भाषा पूर्णतया भावानुसारिणी बन गई है । शब्द स्वयं बोलते हुए प्रतीत होते हैं ।

प्रसाद—प्रसाद गुण का अर्थ इतना ही नहीं कि अर्थ जल्द समझ में आ जाय वरन् यह भी है कि वह अर्थ सहज अभिव्यक्ति के कारण चित्त में एक साथ प्रसन्नता और प्रकाश उत्पन्न करदे । यह गुण तुलसी की कविता में भरा पड़ा है । तुलसी की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की सजीवता ने इस गुण को और भी निखार दिया है । कैकेयी द्वारा राम-वनवास का वर माँगा जाने पर दशरथजी की जो दशा हुई, उसका वर्णन देखिए :—

‘गयउ सहमि नहि कुलु कहि आवा ।
जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
विवरन भयउ निपट महिपालू ॥
दामिनि हनेउ मनहुँ तर तालू ।

सचान (बाज) और दामिनि एक साथ शीघ्रता, आकस्मिकता और सर्वनाश का चित्र उपस्थित कर देते हैं ।

अलंकार—तुलसी ने अलंकारों का प्रयोग कोरे चमत्कार-प्रदर्शन के लिए कम किया है । जैसा कि ऊपर दिखाया गया है उनके अलंकार अधिकतर भावों को स्पष्टता और तीव्रता देने के लिए प्रयुक्त हुए हैं । इसीलिए उनमें समतामूलक अलंकारों का बाहुल्य है । उनकी उपमाएँ जैसे ‘तिजरो को सो टोटका’ ‘गाड़ी के स्वान की नाई’, ‘जैसे गाँठ पानी परे सन की’ बड़ी सजीव और अनूठी हैं । विनयपत्रिका में उन्होंने राम-नाम को ‘अपनो सो घर कहा है—‘रावरो नाम साधु सुरतर है, सुलभ मुखद अपनो सो घर है’ । जो लोग अंग्रेजी के शब्द ‘Sweet Home’ की मधुर व्यंजनाओं पर मुग्ध हों उन्हें उनकी खोज में अंग्रेजी की शरण लेने की आवश्यकता नहीं है । ‘राज डगरो सो’ में उनको Royal Road पर चलने का भी आनंद मिल जायगा । तुलसी की उत्प्रेक्षाओं की सजीव चित्रमयता का उदाहरण ऊपर दे चुके हैं ।

सुलसी ने अपनी बात को पुष्ट करने के लिए बड़ी सुन्दर मालोपमाओं का भी प्रयोग किया है :—

मालोपमा—

‘कामिहि नारि पियारि जिमि,
लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।’

साङ्गरूपक—

विषय वारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।

+ + + +

कृपा डोरि बंसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो ।

हहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ॥

राम—

तू दयालु दीन हौं,

तू दानि हौं भिलारी ।

हौं प्रसिद्ध पातकी,

तू पाप-पुंज-हारी ॥

१ २ ३

क्रम—सद्य, मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे बरिआई ।

१ २ ३ ४ ५ ६

त्यागब, गहब, उपेच्छनीय,

अहि हाटक तून की नाई ॥

परिसंख्या—दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जितहु मनहिं अस सुनिअजग, रामचंद्र के राज ॥

प्रदीप—कुलिस, कुंद, कुण्डल, दानि दुति दसनि देखि लजाई ॥

व्यतिरेक—सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।

सिय अंग सखि कोमल, कनक कठोर ॥

+ + + +

विष बारुनी बन्धु प्रिय जेही ।

कहिए रमा सम किमि वैदेही ॥

असंगति—हुदय तीर मेरे, पीर रघुवीरै ।

उन्मीलित—चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ ।

जानि परै सिय हियरे, जब कुम्हिलाइ ।

सहोक्ति—

बहु प्रतापु बीरता बढ़ाई ।

नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥

‘नाक पिनाकहि में सभंग यमक की छुटा है ।’

भाषा और छंद—तुलसी ने अपने समय की दोनों काव्य-भाषाओं को (रामचरितमानस में पश्चिमी अवधी को और बरवै रामायण में पूर्वी अवधी को, तथा गीतावली, कवितावली और विनयपत्रिका में ब्रजभाषा को अपनाया था किन्तु दोनों को उनके विशेष प्रतिनिधि कवियों की अपेक्षा अधिक साहित्यिकता प्रदान की जायसी की भाषा में चलती हुई पूर्वी का रूप मिलता है, तुलसी ने उसे साहित्यिकता प्रदान की। सूर की ब्रजभाषा की सजीवता चाहे तुलसी में न हो किन्तु उन्होंने उसे भी अधिक साहित्यिक बनाया। विनयपत्रिका की भाषा विशेषकर प्रारम्भिक भाग में, बहुत संस्कृत-गर्भित हो गई है, यह देवताओं के गौरव के अनुकूल है। आत्म-निवेदन में वह काफी सरल है।

तुलसी ने विषय के अनुकूल छंद बदल कर अपने समय की सभी शैलियों को अपनाया है। प्रबंध काव्य के लिए उन्होंने जायसी की दोहा चौपाई-शैली की प्रतिष्ठा बढ़ाई, नीति के लिए कबीर की और उनसे पूर्व से चली आती हुई दोहा-शैली को अपनाया। सहज में याद रह सकने के कारण नीति के लिए दोहे ही उपयुक्त ठहरते हैं। शृंगारिक और अलंकारिक भावनाओं के लिए रहीम के बैरवै छंद को अपनाया गया। राम के यश-गान के अर्थ भाटों की कवित्त-सवैया-शैली को अलंकृत किया सुद्ध-वर्णन में वीर-गाथा काल की छप्पय-शैली को वे काम में लाये।

तुलसी ने तद्भव शब्दों को पर्याप्त रूप से प्रयोग किया है। सीधे प्राकृत के प्रयोग भी उनकी भाषा में देखने में आते हैं और कहीं-कहीं संस्कृत की विभक्तियाँ जैसे ‘मनसि’ भी दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसी ने फारसी, अरबी के शब्दों के (जैसे ‘गरीब निवाज, पायमाल गनी, दाद,

मिसकीनता) प्रयोग करने में संकोच नहीं किया है। 'मिसकीनता' में तो फारसी में संस्कृत का प्रत्यय लगाकर एक प्रकार से वर्णसंकरी सृष्टि रची है।

तुलसी की भाषा में प्रसंगानुकूल शब्द-चयन का भी ध्यान रखा गया है। जहाँ 'डरपत मन मोरा' है वहाँ 'घन घमण्ड' कहकर उनके घोर-गर्जन का आभास दिया गया है और जहाँ मोरों के नाचने की बात है वहाँ 'वारित' जैसे कोमल शब्द का प्रयोग हुआ है।

तुलसी की भाषा में सुहावनों और लोकोक्तियों के प्रयोग से, जैसे 'भइ गति सौंप जखूँ दर केरी 'परसत पनवारो कारो', अंजन कहा आँख जिहि फूटे', 'दूध को जरयो पिवत फूँकि-फूँकि मल्यो है', 'लाज आप ही निज जाँघ उधारे', 'ज्यों गज दसन', सावन के अंधहि' देखिअ रवि दीप कर लीन्हें' की पर्याप्त सजीवता आ गई है। स्वयं तुलसीदास जी की उक्तियाँ, सूक्तियाँ और लोकोक्तियों के रूप में व्यवहृत होती हैं। जैसे 'जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी सो नृप अवस नरक धिकारी', 'इहाँ न लागहि राउर माया', 'रघुकुल रोति सदा चलि आई प्रान जाहु, पर वचन न जाई', 'कोउ नृप होइ हमें का हानि, चेरि छाँड़ि कि अब होवै कि रानी', 'हुइहै वही बु राम रचि राखा' दैव-दैव आलसी पुकारा', 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा', लिखत सुधारक गा लिख राहू', का वषा जब कृषी सुखाने आदि।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी का कलापद्ध पूर्ण रूप से सफल है। क्या भाषाधिकार क्या अलंकार योजना और छन्द विधान-तुलसी अपनी सकता नहीं रखते। किन्तु उनका कला पद्ध सर्वत्र ही भाव पद्ध को स्पष्ट करने में सहायक है।

प्रश्न ३—तुलसी दास के काव्य सौन्दर्य की समीक्षा भाव-पद्ध और कला-पद्ध की दृष्टि से पढ़िए।

उत्तर—प्रश्न १ और २ का उत्तर दीजिए।

प्रश्न—४ विनयपत्रिका की विशेषताएँ बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि इसमें तुलसीदास जी ने अपना अपरिमित पांडित्य, शब्द-भण्डार, वाक्य

विन्यास, बहुता, अर्थ-गौरव उक्ति-वैचित्र्य, मधुरता और सबसे बड़कर अन्तः करण की दैन्य-भावना को खोलकर रख दिया है ।

उत्तर-विनयपत्रिका में तुलसी दास जी की निर्मल आत्मा प्रतिविम्बित हो रही है । माधुर्य, अर्थगाम्भीर्य, काव्य सौष्ठव वैचित्र्य आदि सभी कुछ इस ग्रन्थ में मिलता है । कवि के भावों की मार्मिक व्यञ्जना इसमें की गई है । दास्य भाव की भक्ति का एक नूतन-मार्ग तुलसीदास जी ने खोला इससे पूर्ववर्ती कवि विद्यापति और कबीर ने भक्ति का कोई आदर्श स्थापित नहीं किया । इसके पश्चात् कृष्ण भक्त कवियों ने जो मार्ग भक्ति के लिए बताया, वह साख्य भाव का था । इस प्रकार तुलसीदास किसी से भी प्रेरणा नहीं ले सकते थे । इस प्रकार तुलसी की भक्ति-भावना में दैन्य का प्रदर्शन मिलता है और आत्मसमर्पण की भावना मिलती है ।

भक्ति की पावन बीणा से तुलसी से अपने अन्तरतम के भावों को झकृत किया है । पत्रिका रूपी पुन्य सलिला भागीरथी में स्नान कर मानव अलौकिक आत्मानन्द की प्राप्ति करता है । एक-एक पद में भावों की उच्चाल तरंगें तरंगित होती हुई दिखलाई देती हैं ।

विनयपत्रिका में तुलसीदासजी ने एक पत्रिका अथवा चिट्ठी श्री राम-चन्द्र जी के पास प्रस्तुत की है । पत्रिका सीधी राम के पास नहीं भेजी जा सकती उसके लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होगी । पहुँचने पर भी राम उस पर ध्यान देंगे, जब उन्हें कोई तुलसीदास का ध्यान दिला देगा । वे सीता जी से उचित अवसर पर अपनी याद दिलाने की इस प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं—

‘कवहुंकर अं व अवसर पाइ ।

मेरियौ सुबि दायवी कछु करुण कथा चलाइ ।

दीन सब अंग हीन छीन मलीन अघी अघाइ ।

नाम तैं भरै उदर एक, प्रभु दासी दास कहाइ ।”

जब वे पूछें कि ऐसा कौनसा आदमी हैं ? तो फिर मेरी याद दिला देना—

“बुझि हैं ‘सो है कौन’ कहिबो नाम दसा जनाइ ।

सुनत राम कृपालु के मेरी विगरिवी बन जाय ।”

इसके पश्चात् राम के सामने उसे रखने के लिए तुलसी हनुमान, भरत और लक्ष्मण से प्रार्थना करते हैं। राम के दरबार में उचित अवसर पाकर भरत और हनुमान ने धीरे से लक्ष्मण से तुलसी की ‘विनय-पत्रिका’ रखने की प्रार्थना की। लक्ष्मण ने उसे राम के सामने रख दिया—

‘विहँसि राम कह्यो—“सत्य है सुधि मैं हू लही है ।”

मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की,

परी रघुनाथ हाथ सही है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ‘विनयपत्रिका’ में तुलसी की दैन्य—भावना का और भक्ति—रस का कैसा पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें तुलसीदास जी के जीवन की आध्यात्मिक प्रगति का गतिमय विवरण मिलता है। तुलसीदास जी एक महान कवि एवं विचारक ही नहीं थे, वे एक महान साधक भी थे। उसकी साधना का इतिहास ‘विनयपत्रिका’ में प्रत्येक पद में अंकित है। इस साधना का आरम्भ संसार की असरता से होता है। वे समझ गये हैं कि यह संसार एक धोके की टट्टी है। वे कहते हैं—

‘मैं तोहि अब जान्यो संसार ।

बाँधि न सकत मोहि हरि के बल प्रकट कपट आगार ॥

देखत ही कमनीय कछु नाहिन पुनि किए विचार ।

हमारे दुःख उठाने का कारण हमारे मन की मूढ़ता है। यह मन यदा विषय-विकारों में लिप्त होता रहा। इस कारण मैं जन्म-जन्मान्तरों में भ्रमण करता रहा और दुःख का अनुभव करता रहा—

“मोहि मूढ़ मन बहुत विगोयो ।

या के लिए-सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥

यदि मन विकारों को छोड़ दे, तो वह इस संसार के माया मोहसे छूट सकता है और आत्मसाक्षात्कार कर भावना की शक्ति प्राप्त कर सकता है—

“जो निज मन परिहरै विकारा ।

तो कत द्वैत जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा ॥

+ × + +

रघुपति-भक्ति-वीर छालित चित, विन प्रयास हीं सूझै ।

तुलसीदास कह चिद्विलास जग बूझत बूझत धूझै ॥’

तुलसीदास जी अद्वैतवाद, द्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद के चक्कर में न पड़ने और एक मात्र भगवान की भक्ति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं—

‘कोऊ कहै सत्य, भूँठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै ।

तुलसीदास परिहरै तान भ्रम सो आपन पहिचानै ।

अथवा

“बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ भगरो सो ।

गुरु कछो रामभजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो ॥

तुलसी विनु परतीत प्रीत फिर फिर पचि मरै मरो सो ।

राम नाम वोहित भव सागर चाहै तरन तरौ सो ॥

तुलसी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता वही है कि उसमें राम अर्थात् आलम्बन के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और उसे अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील का भण्डार माना है ।

तुलसी को राम से बड़ा कोई नहीं जँचा । इसलिए वे कहते हैं—

‘राम सो बड़ो है कौन,

मोसों कौन छोटी ।

राम सो खरो है कौन,

मोसों कौन खोटी ॥

ऐसे राम के श्री चरणों में तुलसी ने आत्म-समर्पण कर दिया है । अपनी निष्कपटता, हृदय की पवित्रता, तुच्छता एवं दैन्य का प्रदर्शन भी कर दिया है । आत्म निवेदन के कारण उनमें दैन्यता मिलती है । राम के समक्ष वे अपनी सारी कमजोरियों को रख देते हैं—

‘खोटी खरो रावरो हौं, रावरी सों,

रावरे सौं झूठ क्यों कहौंगो ।

जानो सबही के मन की ।

भक्ति के हृदय की कैसी भव्य निष्कपटता है । भक्त की कैसी अनन्यता है । वे तो स्पष्ट रूप से अपने को राम का गुलाम मानते हैं । राम के पास तक अपनी विनयपत्रिका पहुँचाने और राम के समक्ष प्रस्तुत करने में एवं राम से 'सही' कराने का जो विवेचन दिया है, उसमें दैन्य-भावना का बड़ा सुन्दर चित्रण है । अन्त में जाकर दैन्यता का समुद्र अपनी उत्ताल तरंगों के साथ आलोडित और विलोडित होता हुआ दृष्टिगोचर होती है, उनको यह विश्वास था कि राम उन पर अवश्य ही दिया दिखावेंगे । इसी दृढ़ विश्वास के कारण अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था ।

तुलसी की 'विनयपत्रिका' उनकी अन्तिम रचना है । उस समय तक उनकी काव्य-कला का पूर्ण विकास हो गया था । विचारों में परिपक्वता भी आ चुकी थी । इसलिए विनयपत्रिका उनकी कवित्व शक्ति का पूर्ण विकास है ।

तुलसी की 'विनयपत्रिका' उनके मुक्तक पदों का संग्रह है । इसमें कवि का पूर्ण पांडित्य झलकता है । 'विनयपत्रिका' के आरम्भ में जिन देवताओं की स्तुति की गई है, उससे उनकी धार्मिक भावनाओं का अच्छा परिचय प्राप्त होता है । धार्मिक ग्रंथों में वर्णित देवता का साक्षात् रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है । उनके दार्शनिक विचार और उनकी भक्ति भावना का पूर्ण परिचय हमें 'विनय पत्रिका' में मिलता है ।

विश्वामित्र की याचना पर दशरथ के पितृ-सुलभ हृदय का चित्रण तो बड़ा ही मार्मिक है । उनका शरीर पुलकित हो गया है और शिष्टाचार तथा सम्मति के कारण कुछ कह नहीं सकते हैं:—

‘रहे ठग से नृपति, सुनि मुनवर के बयन ।

कहि न सकत कछु राम प्रेम बस, पुलक गति भरे नीर नयन ॥’

जब राम जनक की पुष्प वाटिका में जाते हैं । तो जानकी और उनकी सहेलियाँ मुग्ध भाव से देखती हैं । उनमें से एक चतुर-सखी यह भी कहती है कि मेरी समझ में ऐसा आता है कि इनको बुलाने के हेतु ही जनक ने इतना डाट बाट बनाया है:—

“मेरे जान इन्हें बोलिवे कारन चतुर जनक ठाठ ठयो इतौरी ॥”

अयोध्या काण्ड में कितने ही मर्मस्पर्शी स्थलों का कारुणिक चित्रण किया गया है। माता कौशिल्या को बड़ा भारी पछतावा है:—

‘राम हौं कोन जतन घर रहि हौं ?

बार-बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहि हौं ।’

जन-प्रवाद और पुर-विलास का दृश्य भी तुलसीदास जी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपस्थित किया है। जो जिसके जी में आता है; वही कहता है:—

जबहिं रघुपति सङ्ग सीय चली ।

विकल-विद्योग-लोग, पुरतिय कहै अति अन्यास अली ॥

कोउ कहै मनगन तजत काँच लागि करत न भूप भली ।

कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकेयी, दुख-विष फलनि फली ॥

साथ जाने की अभिलाषा से संयुक्त लक्ष्मण के हृदय की भावना का बड़ा सफल दर्शन होता है:—

ठाढ़े है लखन कमल कर जोरे ।

उर बकधकी, न कहत कछु सकुचानि,

प्रभु परिहरत सबनि तुन तोरे ॥

प्राण-कृपान-बीर सी छोरे ॥

ग्राम वधुओं द्वारा मूर्ति-त्रय का दर्शन पाकर विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति करना और किसी का यह पछतावा कि उसने भली प्रकार से श्री राम लक्ष्मण तथा सीता जी को नहीं देख पाया बड़ा हृदय द्रावक है। भरत का पश्चात्ताप अथवा आत्मग्लानि बहुत ही सात्विक है। कौशिल्या के अन्य ग्रन्थों से तुलसीदास जी की ‘विनयपात्रिका’ की तुलना करते हुए बा० गुलाबराय जी ने लिखा है:—

तुलसीदास जी की ‘विनयपात्रिका’ में केवल एक ही रस की प्रधानता है और वह है शान्त रस। इसका स्थायी भाव निर्वेद है:—

‘पर बस जानि हँ स्थों इन हँन्द्रन निज बस हँ न हँ से हौं ।

मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद कमल दैसे हौं ॥’

देखिए संस्कृत गर्भित भाषा, मधुर व्यञ्जना भी तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका' में मिलती है। अलंकारों का प्रयोग भी उसमें बहुत सुन्दर मिलता है। 'दुर्गा सप्तशती' और 'गंगा लहरी' में हमें उनकी शब्द-शक्ति की गहनता का पता चल जाता है। कवि की अनुप्रासिक शब्द-योजना और कोमलकान्त पदावली का एक उदाहरण देखिए—

‘विष्णु पद कंज मकइन्द तब अम्बुवर बहसि दुख दहसि अघबुन्द विद्रा
विना

अर्थगौरव भी तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका' में खूब मिलता है। तुलसी में कहीं भी शब्द और अर्थ की दरिद्रता नहीं मिलती। सीता से जब वे अपने विषय में राम से कहने की प्रार्थना करते हैं, उस समय ये पंक्तियाँ अर्थगौरव की दृष्टि से बड़ी उत्तम हैं। साथ ही साथ भाव और भाषा दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य भी मिल जाता है—

‘कबहुक अम्ब अवसर पाई।

मेरी हूँ सुधि दायवी कुछ करुण कथा चलाई ॥’

‘बावरो रावरो नाह भवानी।’ में भी बड़ी सुन्दर व्यञ्जना है।

उक्ति-वैचित्र्य तो उसमें सब जगह मिलेगा। राम के समाने अपनी विनयपत्रिका पहुँचाने में तुलसी ने जो वचन चातुरी दिखाई हैं, वह वास्तव में उचित है। उन्होंने सब जगह अपनी दीनता और दोषों की दिखलाया है। तुलसी के प्रत्येक पद में उक्ति वैचित्र्य ही भरा हुआ है।

विनयपत्रिका दास्य भक्ति का सबसे पहला पदों में रचा गया ग्रन्थ है। इनसे पहिले विद्यापति एवं कबीर ने भी पद रचना की थी। विद्यापति में राधाकृष्ण के वासनात्मक शृंगार के चित्र हैं और कबीर में शुष्कता है पर तुलसी में सरसता और पवित्रता दोनों हैं। गहराई की दृष्टि से तुलसी सूर से भी आगे हैं। इनके पद राग रागिनियों में हैं। ये राग रागिनियाँ भावों के अनुसार चलती हैं। हर्ष और करुणा को भावना में केदारा सोरठ और आसावरी; वीर को भावना में माहु और कान्हारा, शृंगार की भावना में ललित, गौरी, विलावल, सुहो और वसन्त शान्त की भावना में रामकली, कल्याण और टोड़ी का प्रयोग है। इसके साथ ही

साथ हम यह भी देखते हैं कि तुलसीदास जी को संगीत का भी ज्ञान था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी की 'विनयपत्रिका' अनेक दृष्टियों से बड़ा ही महत्व पूर्ण ग्रन्थ है । डा० श्यामसुन्दर दास जी तो इसे कई बातों में रामचरितमानस से भी बढ़कर मानते हैं । उसमें भावाभिव्यञ्जन, हृदय की निर्मलता, निष्कपटता, भावना, माधुर्य, संगीतात्मकता, भाषा का सौन्दर्य, रस की सुन्दर निष्पत्ति आदि सभी कुछ है ।

प्रश्न ५—गीतावली के काव्य सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न—“हृदय के विभिन्न भावों की व्यञ्जना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है । इस कथन की समीक्षा उदाहरण सहित कीजिए ।

उत्तर—गीतावली का विषय भी रामचरित मानस की तरह राम-यश गान है । यह गीत काव्य है किन्तु इसमें रामचरित के मार्मिक स्थलों का अनूभूति पूर्ण वर्णन है । इसमें सात केन्द्र हैं । कथा राम जन्म से आरम्भ होकर राम के राज्यभिवेक पर समाप्त होती है । गीतावली के मधुर पदों में तुलसी के भावों की मार्मिक व्यञ्जना की है । श्रीराम की छुट्टी वर्णन से कथा का आरम्भ होता है । जागरण करती हुई नारियों को नहीं नहीं आती । यामिनी अभिरगिनी हो रही है—

माता कौशल्या श्रीराम को सुलाना चाहती हैं । वात्सल्य से पूरित माता का हृदय गद्गद् हो जाता है । वह तो एक क्षण के लिए भी दूर नहीं जाना चाहती हैः—

‘पौढ़िए लालन, पालने हौं फुलावौ ।

कर-पद-मुख-चख-कमल लसत लखि लोचन भँवर फुलावौ ॥”

कौड़ा के हेतु अनुज द्वारा आमंत्रण किए जाने पर प्रिय-सखाजनों की अभिलाषा का वर्णन भी बड़ा सुन्दर है ।

‘खेलन चलिए आनन्द कन्द ।

सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े विपुल बालक वृन्द ॥

तृषित तुम्हारे दरस कारण, चतुर चातक दास ।

वपुष-वारिद वरषि छवि जल, हरहु लोचन प्यास ॥’

सामने शपथ-पूर्वक अपनी निर्दोषिता को प्रमाणित करने वाले भारत का यह कहना कि संसार में किसी की भी महिमा-रूपी मृगी दुष्टों के वचन-रूपी वाशों से बच नहीं सकी है, अर्थात् पर प्रभुता से पीड़ित होकर पापी-जन अकारण ही निन्दा करने का अव्यस्त होते हैं, इसी प्रकार मैं लाल पवित्र हूँ, फिर भी संसार के आलोचक मुझे निर्दोष नहीं मानेंगे :—

‘महिमा-मृगी कौन सुकृती को,

खल बच विसिखन बाँची ।’

अरण्ड-काण्ड में दाम्पत्य-स्नेह से समन्वित दो चार वर्णन बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं। इसी प्रकार किष्किन्धा में सीता जी के आभूषणों को देख-पहिचान कर श्री राम भाव-विभोर हो जाते हैं जो सहज स्वाभाविक है :—

भूखन वसन विलोकत सिय के ।

प्रेम विवस मन कम्प पुलक तनु,

नीरज नयन नीर भरे पिय के ।

सुन्दर काण्ड में हनुमान तथा सीता के बीच जो वार्तालाप कराया गया है, उसमें सीता के विरह संतप्त हृदय की विविध भावनाओं का बड़ा ही मर्म स्पर्शी चित्रण है। सीता जी को अपने बंदी जीवन को ही चिंता नहीं है वरन् जग-जननी के समान वे लोकपाल, सुर नाग, मनुज सभी की मुक्ति याचना करती है :—

‘लोकपाल, सुर, नाग, मनुज, सब

परे बंदि कब मुकतावहिंगे ?’

वायु-पुत्र के चलते समय सीता की जैसी अवस्था हुई उसका वर्णन करते हुए लिखा है कि अंजनीनंदन के चलते ही सीता का कण्ठ भर आया और शरीर पुलकित हो गया तथा नेत्रों में जल छा गया। अत्यंत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, जो प्राकृतिक भी है और स्वाभाविक भी है :—

‘कपि के चलत सिय को मनु गहवरी आयो ।

पुलक सिथिल भयो सरीर नीर नयनन्हि छायो ॥

लंकाकाण्ड में लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में, श्रीराम के मुख से निकलने वाली कोमल भावनाएँ सहज आकर्षण करने वाली हैं। श्रीराम कहते हैं कि मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा के हेतु लक्ष्मण ने प्राणोत्सर्ग कर दिया।

“मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं।

सेवक, सखा, भगति भायप गुन चाहत अब अथए हैं।”

इन सबके ऊपर श्रीराम का शरणावत्सल-रूप है, जहाँ उनको न लक्ष्मण की चिंता है और न अपनी। वे कहते हैं कि वानर आदि तो गिरिकन्दराओं में लौट जायेंगे और मैं लक्ष्मण की गति का अनुसरण करूँगा अर्थात् जीवन का परित्याग कर दूँगा, परंतु मुझे सबसे अधिक चिंता है विभीषण की—शरणागत का क्या होगा?—

“गिरि-कानन जै है साखामृग, हौं पुनि अनुज संघाती।

हूँ है कहा विभीषण की गति, रही सोच भरि छाती।”

कैसी कोमल भावना है, जहाँ प्रेम के क्षेत्र में नियमों का निर्वाह नहीं होता है। श्रीराम को शरणागत की ही विशेष चिंता है।

उत्तर काण्ड में राम राज्याभिषेक का वर्णन है। इस पद में कवि ने अपने इष्ट देव की प्रभुता का वर्णन किया है।

जहाँ तक ‘गीतावली’ के पदों का सम्बंध है, वे सभी गेय पद हैं और ब्रज भाषा में रचित हैं। उस युग में ब्रज भाषा को ही काव्योचित भाषा माना जाता था। शब्दों के चयन का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। जहाँ जैसे शब्द की आवश्यकता है, वहाँ उसका वैसा ही प्रयोग किया है। इसी कारण, इन पदों में माधुर्य-गुण भरपूर है।

व्याख्या

जइ चेतनहि ग्रंथि.....विग्यानमय।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत पंक्तियों में सार तत्व ज्ञान के प्राप्ति का उपाय बतला रहा है।

व्याख्या—माया और जीव का ग्रंथि-बंधन होने से ही मनुष्य संसारो हुआ। न वह ग्रंथि खुलती है और न वह सुखी होता है। इसको खोलने

के वेद और पुराणों ने बहुत से उपाय कहे हैं परन्तु वह छूटती नहीं अपितु अत्यधिक उलझती ही जाती है।

जीव के हृदय में विशेष अन्धकार है, जिससे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। फिर वह गाँठ कैसे खुले ?

ईश्वर जब ऐसा संयोग करे तभी वह गाँठ खुल सकती है। सतोगुणी श्रद्धारूपी सुन्दर गाय जो भगवत् कृपा से आकर हृदय में निवास करे और जप तप, व्रत, संयम और अपार नियम जिनको वेद शुभ धर्म और कल्याणकारी आचरण कहते हैं। इन हरेतृणों को जब गाय चरे, तब भाव (प्रेम) रूपी बछड़े को पाकर पिन्हाएगी। निवृत्ति (सांसारिक माया से पृथक् रहने की चेष्टा)। लोबना (दुहते समय गाय के पैरों में बाँधने की रस्सी) है। विश्वास वर्तन है और निर्मल मन रूपी अहीर गाय का सेवक है।

हे भाई ! यह परम धर्म रूपी दूध को दुहकर और निष्काम रूपी, अग्नि बनाकर श्रौटावे। तब सन्तोष और क्षमा रूपी पवन से ठंडा करके सौम्यता रूपी जीवन देकर जमावे। प्रसन्नता रूपी स्त्री विचार रूपी मथानी से मथे। इन्द्रिय-दमन आधार (मथानी का ऊपर का भाग) है, सत्य और सुन्दर वाणी रूपी रस्सी लगावे तब मथकर निर्मल, पवित्र, सुन्दर, कल्याणकारी वैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले।

तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके शुभाशुभ कर्म रूपी ईंधन लगावे जिससे ममता रूपी मैल (माठ, छाछ) जल जाय। उस ज्ञान रूपी धृत की बुद्धि रूपणी स्त्री शीतल करे। तब विज्ञान-रूपणी बुद्धि स्वच्छ हो पाकर चित्त रूपी दिये में भरे और समता रूपी दृढ़ दीबट बनाकर उस पर धरे।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था और सत्, रज, तम तीनों गुण रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रुई निकाल कर सुन्दर मोटी बत्ती बनावें।

इस प्रकार तेजोराशि विज्ञान रूपी प्रचंड दीपक की लौ प्राप्त होगी। जिसके समीप में जाते ही मदादिरूपी समस्त पतंगे भष्म हो जाँयगे।

अलंकार—सौंग रूपक ।

रघुवर बाल.....लर खरनि ।

प्रसंग—तुलसीदास राम के बाल-सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं ।

केन्द्रीय-भाव—राम का सौन्दर्य अवर्णनीय है । उसके समक्ष सभी उपमान हीन हो रहे हैं ।

व्याख्या—मैं श्री रामचन्द्र जी के मनोहर नूपुर तथा करघनी का रुन-भुन रुन-भुन शब्द मन को हर लेता है । मनोहर तथा मृदुल श्याम शरीर पर आभूषणों की सजावट ऐसी दिखाई पड़ती है मानों अति सुन्दर शृंगार रस का नवीन-तरुवर अद्भुत फलों से सम्पन्न है । लावण्य के युद्ध में श्री राम की भुजाओं ने सर्पों को, नेत्रों ने कमलों को और मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया है । इसी कारण सर्प विल में, कमल जल में तथा चन्द्रमा आकाश में जा बसे हैं तथा दूसरी उपमाएँ भी (उपमान) डर कर छिप गई हैं । मणिमय आँगन में घुटनों के बल चलते समय राम के हाथों का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह ऐसा जान पड़ता है मानों पृथ्वी राम की इस छवि को कमल के संपुट में भर-भर कर अपने हृदय में धारण कर रही है उस समय महाराज दशरथ की पत्नी कौशल्याजी अपने पुत्र को देखकर अपने पुण्य फलों का अनुभव कर रही थी कि राम उनके पूर्व पुण्यों के ही सुफल हैं । तुलसीदास जी के हृदय में भी प्रभु श्री राम का वह किलकारी मारना, आनन्ददायक लड़खड़ाना बसा रहता है ।

विशेष—१ रस-वात्सल्य ।

२ अलंकार—मनोज का शोभा से पराजित होने में प्रतीप, सूर्य को छोड़कर ललिमा का चरणों में बसने की भावना से उत्प्रेक्षा, मंज मेचक मृदुल में 'म' वर्ण की एक ओर से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानु-प्रास, राम के शरीर में शृंगार तरु की कल्पना से उत्प्रेक्षा, "भुजनि-डरनि" में वस्तुओं के गुण और क्रियाओं का उसी क्रम से वर्णन होने से यथासंख्य, "लसत कर—घरनि" में उत्प्रेक्षा और ललित बरखरीन में ले वर्ण की एक बार आवृत्ति से छेकानुप्रास है ।

सुखमा सुरभि.....लहरी ।

प्रसंग—इस पद में तुलसीदास जी राम और सीता के विवाह के समय पर उनकी सुन्दरता का इस प्रकार वर्णन प्रस्तुत करते हैं :—

केन्द्रीय-भाव—राम और सीता के भुवन-मोहन सौन्दर्य के समस्त काम और रति भी महत्वहीन हैं । प्रस्तुत पद में इसी तथ्य का पल्लवन है ।

व्याख्या—राम दूल्हा बने हुए हैं और सीता दुलहिन । ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव रूपी ग्वाले ने सुन्दरता रूपी गाय से शृंगार रूपी दूध दुहा हो और फिर अमृत से युक्त दही बनाया और फिर उसे मथ कर मक्खन निकाला हो और उस अलौकिक मक्खन से राम और सीता का सृजन किया हो । उन दोनों को देखने से जो सौंदर्य की प्राप्ति होती है, वह वर्णन नहीं किया जा सकती । तुलसीदास जी कहते हैं कि राम और सीता को मानो ब्रह्म ने रूप की राति एवं काम की सिला (अन्न के दाने) के समान बनाया हो ।

विशेष १—राम और सीता का मनोरम वर्णन ।

२—रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

जो पै मातु.....समय सुखारी ।

प्रसंग—भरत कौशल्या में आत्मग्लानि व्यक्त कर रहे हैं ।

व्याख्या—भरत ने कहा—हे माता कौशल्या ! यदि माता कैकेयी की सम्मति में मेरी सहमति हो तो मैं इस संसार में अपने मुख की कालिमा कहाँ धो सकता हूँ ? यदि ऐसा हो होता तो आज मैं सौगन्ध खाने से कैसे निर्दोष हो सकता हूँ ? कौन मेरी बात को सच्चा मानता ? भला किस पुण्यवान की महिमा रूपी हरिणी दुष्टों के बचन बाणों से बिद्ध नहीं हुई हैं अर्थात् दुष्टों के उलाहने सभी को सुनने पड़ते हैं । किसी की जीभ पकड़ो नहीं जा सकती है, जिसकी जो समझ में आता है वह वैसा ही कहता है । दोनों के रक्तक, करुणा के सागर प्रभु के बिना मेरे हृदय की बात को कौन मान सकता है ? तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम के वियोगरूपी विषम विष से सब नर-नारी व्याकुल हो रहे थे, उस

समय भरत जी के द्वारा वे स्नेह रूपी अमृत से सिञ्चित किए गए तो सब सुखी हो गये ।

काव्य सौन्दर्य—१—आत्मग्लानि भाव का सुन्दर चित्रण है ।

२—अलङ्कार—छेकानुप्रास, रूपक, विनोक्ति ।

तुम्हारे विरह आरति दैस ।

प्रसंग—हनुमान राम से सीता की विरह वर्णन कर रहे हैं ।

व्याख्या—आपके विरह में सीता जी की जो अवस्था हुई है, हे करुणानिधान श्रीराम उसे मन लगाकर सुनिये ! मैं उसे कुछ जानता तो हूँ परन्तु कर नहीं सकता हूँ । उसके नेत्रों का आँसू, कंजूस के धन के समान, नेत्रों के कानों में ही रहता है । 'हा' ध्वनि रूपी पक्षिणी (खगी) को, लज्जा रूपी पिंजड़े में मौनरूपी विशाल वधिक ने, हठपूर्वक हृदय में ही रखा है । जिस उपवन में वे रहती हैं, वहाँ के पशु-पक्षी उनके विरह ही आग से तप्त होकर अपने-अपने पुराने निवास स्थानों को छोड़कर भाग गये हैं । उनकी श्वाँस-वायु के साथ भूल से भी भेट हो जाने पर शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन उस ओर पैर भी नहीं रखता । तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता की दशा इस मुख के वर्णन करने में तो अत्यन्त गौण (गौन) जान पड़ती है । आप दर्शन दीजिए और उनका दुःख दूर कीजिये क्योंकि आप तो दीन जनों के दुःख दमन करने वाले हैं ।

काव्य-सौन्दर्य—१—रस-विप्रलम्भ शृंगार ।

२—अलंकाररूपक, अतिशयोक्ति, अनुप्रास ।

जागु-जागु सुभायरे ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में तुलसी अज्ञान-निशा में सोते हुए जीव को जगाने का उद्बोधन कर रहे हैं—

व्याख्या :—हे मूर्ख जी ! जाग, जाग । इस संसार-रूपी रात्रि को देख शरीर और घर के मोह की इस प्रकार से समझ जैसे बादल में चमकने वाली बिजली जो क्षमिक है और कौंध कर छिप जाती है सोने और स्वप्न में भी तू साँसारिक कष्टों को सह रहा है । वहाँ भी तुझे आनन्द नहीं है जागने पर भी कष्ट है और सोने में भी दुःख है । तू मृगजल

में डुबकियाँ लगा रहा है, तुम्हें रस्सी के साँप (भ्रम) ने डस लिया है । यद्यपि दोनों ही बातें संभव नहीं हैं, न तो मृग-जल में डूबा ही जा सकता है और न रस्सी का साँप डस ही सकता है परन्तु भ्रम के कारण बुद्धि ऐसी हो गई है चारों वेद और पंण्डितों का यही कहना है तू भी तो अपने मन में विचार करके देख ले कि स्वप्न के समस्त दोष और दुःख जगाने पर ही दूर हो सकते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि जागने पर ही बोधोदय होने पर ही सांसारिक तीनों ताप (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) नष्ट हो सकते हैं और तभी निष्काम बुद्धि से श्री भगवान के नाम में पवित्र प्रीति उत्पन्न होती है ।

काव्य सौन्दर्य १—रस निर्वेद स्थायी होने से शान्त रस है ।

२—अलंकार—जागु—जामिनी में 'ज' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास, देह-गेट की समानता बिजली होने के कारण, उपमा, 'सोवत—हू' में 'स' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति से वृत्यानुप्रास, 'बूझ्यो—हू' में भ्रम ।

ऐसी मूढ़ती..... निजपन की ।

प्रसंग—गोस्वामी जी प्रस्तुत पद में स्पष्ट कर रहे हैं कि मन की मूढ़ता के कारण मनुष्य संसार के प्रेम जाल में ही पड़कर दुखी हो रहा है ।

व्याख्या—इस मन की कुछ ऐसी मूर्खता है कि श्रीराम की भक्ति रूपी गंगा को त्याग कर ओस की बूँदों से तृप्ति की आशा करता फिरता है वह भक्ति को छोड़ कर विषय-विलास की ओर दौड़ता है धुएँ के समूह को देख कर जैसे प्यासा पपीहा उसे मेघ समझ लेता है यद्यपि उस समूह में न तो शीतलता ही प्राप्त होती है और न पानी ही, व्यर्थ उसकी ओर देखने से नेत्रों की हानि है होती है । तात्पर्य यह है कि जीव विषयानन्द में ही सुख मानता है परन्तु आग में घी डालने से अग्नि बढ़ती है, इसी प्रकार विषयों के भोग करने से लाभ कुछ नहीं होता है । जिस प्रकार से मूर्ख बाज (सेन) काँच की दीवार में अपने शरीर की परछाँही को देखकर उसे अपना प्रतिद्वन्दी मान लेता है और उस पर

भूल के कारण, अपने मुख की हानि भूल कर, शीघ्रता से दूट पड़ता है।
 यद्यपि वहाँ कुछ है नहीं उल्टे उसकी चोंच ही दूटने का भय है। हे
 कृपासागर ! मैं इसकी कुचालों का वर्णन कहाँ तक करूँ, आप तो अपने
 सेवकों की दशा जानते ही हैं। क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं। हे प्रभो !
 मेरे महान कष्ट दूर कीजिये और इस प्रकार से अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा
 कीजिये क्योंकि जो आपकी शरण में आता है आप उसकी रक्षा
 करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य ?—स्थायी निर्वेद होने से शान्त रस है।

२—अलंकार—राम-भगति में सुरसरिता के आरोप से रूपक है।
 पद में अन्यन्त्र भ्रम, दृष्टान्त। अनुप्रास और छेकानुप्रास है।

माधव ! मोह पास.....न पावै कोई।

प्रसंग—गोस्वामी जी इस पद में स्पष्ट कर रहे हैं कि जब तक हृदय
 में ज्ञान जाग्रत नहीं होता तब तक बाहरी उपायों से मोह-पाश का इतना
 संभव नहीं है।

व्याख्या—हे माधव ! मेरा यह मोह का बन्धन कैसे छूटेगा ? बाहर
 से चाहे करोड़ों साधन ही क्यों न किये जायें परन्तु भीतर की अज्ञान की
 गाँठ कैसे खुलेगी ? जब एक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा तब तक बाहरी
 साधन जीव को मुक्त नहीं कर सकते हैं। घी से परिपूर्ण कढ़ाह में, जो
 चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, यदि सौ कल्प तक भी ईंधन और
 आग जलाते रहो तब भी चन्द्रमा का नाश नहीं हो सकता है क्योंकि
 जब तक घी का अंश शेष रहेगा चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखाई देता रहेगा।
 इसी तरह जब तक मोह रहेगा तब तक भेद-बुद्धि भी रहेगी जैसे पेड़ के
 खोते (कोटर) में कोई पक्षी रहता है तो उस पेड़ के काट डालने से
 वह नहीं मर सकता है, वैसे ही अनेक साधन क्यों न किये जायें परन्तु
 बिना आत्मज्ञान के यह मन जो विचार विवेक से हीन है शुद्ध नहीं हो
 सकता है। अर्थात् मन रूपी पक्षी, जो शरीर रूपी कोटर में रहता है,
 शरीर का नाश होने पर भी मरता नहीं है, उसे पकड़ कर पिंजड़े में
 बंद करके भगवद् अर्पण कर दो तभी वह सुखी रहेगा यह भाव है। हृदय

तो अंशुद्ध है और विषयों में अनुरक्त होने से अपवित्र है तो शरीर को धोने से क्या होगा (मन शुद्ध नहीं हो सकता है) उसी प्रकार जैसे बाँबी पर अनेक प्रहार करने से, उसे पीटने से सर्प (उगरे, नहीं मर सकता, पीटने वाला ही यत्न करके हार जाता है । जीव को गुरु की दया के बिना विशुद्ध ज्ञान का प्राप्त होना असम्भव है—संशय—शून्य विवेक नहीं होता और विवेक के बिना इस घोर संसार सागर से कोई पार नहीं जा सकता है ।

काव्य—सौन्दर्य—निर्वेद स्थायी होने से शान्त रस है ।

अलंकार—रूपक ।

अस कछु.....सपनेहुँ सुख नाहीं ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि भगवान की कृपा के बिना मोह दूर होना संभव नहीं है ।

व्याख्या—हे रघुनाथ जी ! मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि बिना आपकी कृपा के न तो मोह ही छूट सकता है और न माया ही पृथक् हो सकती है । यह सिद्धांत अटल है व्यक्ति वाचनिक-ज्ञान (वाक्य ज्ञान, बातें कर सकने में चतुर) में कितना ही कुशल क्यों न हो परन्तु यह संसार-सागर से पार नहीं जा सकता है अर्थात् केवल बातों से ही संसार-सागर पार थोड़े ही हो सकता है । जिस प्रकार से रात्रि में घर के बीच में, दीपक की बातें करने से ही अंधेरा थोड़े दूर हो सकता है अर्थात् बिना आत्मानुभूति के कोई मुक्ति नहीं पा सकता है । जिस प्रकार से कि कोई अत्यन्त दीन और दुखी भोजन रहित, भूख से दुःख पा रहा हो तो घर में कल्पवृक्ष अथवा कामधेनु का चित्र मात्र बना देने से विपत्ति दूर नहीं हो सकती अर्थात् उनकी न तो भूख ही मिट सकती है और न इच्छाएँ ही पूर्ण हो सकती हैं । कोई षट्तरस व्यंजनों की चर्चा रात-दिन करे तो उससे क्या ? जो भोजनों का मान लिए बिना ही प्रस्तुतः भोजन करता है और भूख के मिट जाने से आनन्द उसे मिलता है, उसे वही जानता है केवल वेद शास्त्रों की बातें करने सुनने वालों से ब्रह्म-साक्षात्कार कर लेने वाला कहीं बड़ा है । जब तक अपने हृदय में आत्म-ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ

और
तुलसी
में भी

कारण
का नि
वित

भाव
यह

मित्र
मान
को
करने

यह
वस्तु

इन
तथा

कि
निष्क

मन
बिन

विभि

अथ
कर
के

और सांसारिक विषयों की आशा मन में बनी ही रही, तब तक हे तुलसीदास ! यह जीव संसारी योनियों में भटकता ही रहेगा, इसे स्वप्न में भी आनन्द नहीं मिलेगा ।

काव्य-सौन्दर्य—विनोक्ति, अनुप्रास दृष्टांत, रूपक ।

जो निज मन.....बुझत बूझै ।

प्रसंग—जीव ब्रह्म का ही रूप है । किन्तु माया जनित विकार के कारण वह उससे पृथक् हो रहा है, विकारों से रहित होने पर ही उसे ब्रह्म का चिद्बिलास प्राप्त होता है । प्रस्तुत पद में कवि इसी तथ्य को पल्लवित कर रहा है—

व्याख्या—यदि अपना मन अपने विकारों को छोड़ दे, तो फिर द्वैत-भाव से उत्पन्न सांसारिक दुःख, भ्रम और बड़े भारी शोक क्यों हो ? यह समस्त दुःख-सुख, संकल्प-विकल्प मन के कारण ही होते हैं । शत्रु, मित्र और उदासीन (तटस्थ) इन तीनों प्रकार के प्राणियों को मन से ही मान रखा है । वस्तुतः कोई शत्रु है न मित्र है और न मध्यस्थ है । शत्रु को तो सर्प के समान त्याग देना चाहिए, मित्र को सोने की भाँति ग्रहण करना चाहिए तथा मध्यस्थ को तिनके के समान उपेक्षा करनी चाहिए, यह सब भी मन की ही कल्पनाएँ हैं । भोजन, वस्त्र पशु तथा विभिन्न वस्तुएँ जिस प्रकार से मणि (रुपया) के अन्तर्गत रहती हैं उसके द्वारा इन सबको खरीदा जा सकता है । उसी प्रकार स्वर्ग, नर्क, जड़, चेतन्य तथा बहुत से लोक इस मन में ही सन्निहित हैं । मन ही यह मानता है कि अच्छे कर्मों से स्वर्ग तथा बुरे कर्मों से नर्क मिलेगा, व्यक्ति को तो निष्काम होकर कर्म करना चाहिए । सो यावत् पदार्थों का भण्डार यह मन ही है । जैसे पेड़ के मध्य में पुतली (पुतरिका और सूत) में वस्त्र बिना बनाये, पहले से ही विद्यमान रहते हैं, इसी प्रकार से मन में भी विभिन्न शरीर लीन रहते हैं जो (समय-समय पर) व्यक्त हो जाते हैं । अर्थात् लकड़ी में से काट कर ही मूर्ति बना ली जाती है और सूत जोड़ कर ही कपड़ा बुन जाता है । इसी भाँति मन की कामनाएँ ही जन्मादि के मुख्य हेतु हैं । जैसी इच्छा होगी वैसा ही शरीर धारण करना होगा ।

श्री राम की भक्ति रूपी जल से (बारिछालित) जब हृदय (धुल कर) निर्मल हो जायगा तब बिना किसी प्रयत्न (प्रयास) के ही विवेक प्राप्त हो जायगा । किन्तु हे तुलसीदास ! तू चेतन्य आनन्द को अखण्ड आत्मानन्द को (चिद्-विलास) समझते समझते ही संभ्रम सकेगा, चैतन्य, के विलास रूप जगत् का सत्य तत्त्व परमात्मा धीरे-धीरे ही समझ में आवेगा ।

काव्य सौन्दर्य—स्थायी निर्वेद होने शांत रस ।

अलंकार—छेकानुप्रास 'शब्द—नीर' में यथा सरल दृष्टान्त और रूपक काहे न रसना.....जस गावहिं ।

केशवदास

प्रश्नोत्तर १०—केशव की रचनाओं का उल्लेख करते हुए उनके काव्य के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

उत्तर—केशव रचित ग्रंथ निम्नलिखित हैं—कविप्रिया रसिकप्रिया रामचन्द्रिका, वीरसिंह चरित, विज्ञानगीता, रतन बावनी और जहाँगीर जस-चन्द्रिका । लाला भगवान दीन ने राम अलंकृति मंजरी, नखशिख, छंदशास्त्र तीन ग्रंथ और बताये हैं । कविप्रिया और रसिकप्रिया आचार्यत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं । रामचन्द्रिका में रामकथा का विस्तार से वर्णन है, विज्ञान गीता में केशव की दार्शनिक विचारों का पल्लवन है । केशव की कीर्ति का आधार उनका प्रमुख काव्य रामचन्द्रिका है ।

केशव संस्कृत के अलंकारवादी सम्प्रदाय से प्रभावित थे । इसलिए उनकी कविता में अलंकार की प्रधानता है ।

केशव के युग में भक्ति का पर्याप्त विचार था और तुलसी तथा सूर जैसे महाकवि तथा भक्त-राज भी उपस्थित थे । इसलिए रामचरितमानस और सूर-सागर की समकक्षता में रामचन्द्रिका कभी भी और कहीं भी ठहर सकेगी—यह विवादास्पद है । क्योंकि रामचन्द्रिका इस बात की प्रमाणित नहीं करती कि कवि के हृदय में भक्त की-सी कोमलता और

आर्द्रता थी। रामचंद्रिका में राम का वर्णन प्रायः शृंगारिक ही है। केशव थे अलंकार-वादी, परंतु सर्वत्र ही अलङ्कार शोभा को बढ़ाने वाले सिद्ध नहीं होते।

अलंकारः—केशव को अलंकार अत्यधिक प्रिय थे और सम्भवतः इसीलिए उनके काव्य में कृत्रिमता आ गई है। सभी स्थानों पर अलंकारों को भरमार के कारण भाव-वैषम्य की बुराई पैदा हो जाती है, परन्तु केशव के आस-पास की परिस्थितियाँ ही ऐसी थी। केशव ने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन खूब किया है। कहीं-कहीं तो एक-एक छंद अनेक अलंकारों का समावेश कर दिया है। इस प्रकार वे अधिकाँश में चमत्कारवादी कवि हैं। इस चमत्कारिता का निर्वाह उन्होंने यत्र तत्र सर्वत्र ही किया है। केशव अलङ्कारों में उलझ जाने के कारण सहृदयता से भले ही दूर हो गये हों परंतु यह तो मानना ही पड़ेगा कि उनकी समझ, प्रतिभा और गंभीरता विस्तृत थी। वे एक-एक दृश्य को लेकर उत्प्रेक्षा, संदेह और रूपक की भड़ी बाँध देते हैं। वस्तुतः वे अलङ्कारिक महा-कवि हैं।

रस-योजनाः—केशव ने रसिक-प्रिया में शृङ्गार रस का वर्णन ही अधिक विस्तार से किया है, शेष रसों का चलता हुआ परिचय दिया है। अंतिम रूप से यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में भी शृङ्गार की ही प्रधानता है। इसका कारण है। वे अपने युग के वातावरण और अपने संरक्षकों की रुचि के कारण भी स्वतंत्र नहीं थे और इस सबसे ऊपर उनकी अपनी रुचि भी क्लिष्ट कल्पना की ओर थी। उनके आदर्श भी बहुत ऊँचे नहीं थे। यही कारण है कि करुण से करुण दृश्य भी उनके नेत्रों को सजल नहीं बना सका, उनके मर्मस्थल को छू नहीं सका। उदाहरण के लिए रामचंद्रिका में राम-वन-गमन, दशरथ मरण आदि अत्यंत ही करुणा पूरित स्थल हैं; परंतु इनका कोई प्रभाव केशव पर नहीं पड़ा है। यद्यपि सर्वत्र ही ऐसा नहीं है। लक्ष्मण की शक्ति लगाने पर भ्रातृ-वियोग से पीड़ित राम का चित्रण केशव ने बड़ा अच्छा किया है, परंतु शोक की भावनाओं को प्रबल-सबल बनाने वाले स्थलों पर

उनकी दृष्टि बहुत ही कम गई है। इसी प्रकार अन्य रसों के प्रति उनका कवि-हृदय उदासीन ही रहा है।

छन्द-योजना:—केशव ने अपने काव्य में विभिन्न छंदों का उपयोग किया है और बड़ी सफलता के साथ किया है “रामचंद्रिका” में थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही छंद बदल दिये गये हैं, जिनके कारण वह कभी-कभी ‘छंद ग्रंथ’ सा जान पड़ने लगती है। जो भी हो, केशव ने सभी प्रकार के छंदों का सफल प्रयोग किया है, जिनमें से कवित्त और सवैया उनके प्रिय छंद हैं।

शैली:—जैसा कि पहले कहा जा चुका है केशव को लोगों ने ‘कठिन काव्य का विकट पिशाच’ कहकर पुकारा है, सचमुच ही उनकी क्लिष्ट-कल्पना और संस्कृत के प्रभाव ने उनकी शैली में दुरुहता उत्पन्न कर दी है। रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति उनकी शैली में सरलता नहीं है, पढ़ने पर यही जान पड़ता है कि हम किसी परम विद्वान संस्कृतज्ञ से बातें कर रहे हैं, जिसकी अटपटी वाणी हमारी समझ से कभी दूर जा पड़ती है। अलङ्कारों से लदी हुई उनकी शैली ‘भूषण-भार’ सम्हालने में नितांत असमर्थ-सी जान पड़ती है।

भाषा:—केशव की भाषा बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा है। डा० रामकुमार वर्मा की की सम्मति से इस ब्रज भाषा में उच्चकोटि का स्वाभाविक माधुर्य नहीं आ पाया, क्योंकि केशवदास ने पाण्डित्य दिखलाने की चेष्टा में भाषा का प्रभाव बहुत कुछ खो दिया है। उनका निवास स्थान बुन्देल खण्ड के अंतर्गत ओरछा होने के कारण, कविता में बहुत से प्रचलित बुन्देलखण्डी शब्द आ गये हैं। यह प्रभाव शब्दों के प्रयोग, क्रिया के कालों तथा संज्ञा सर्वनामों के रूपों में भी दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं तो बुन्देलखण्डी मुहावरे भी ज्यों के त्यों मिलते हैं। कतिपय ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनका प्रयोग ब्रजभाषा में नहीं होता है; जैसे आलोक (कलङ्क), लॉच (रिश्वत), ऐलो (आइ), नारी (समूह) गौर मदाइन (इन्द्रधनुष) आदि। उनकी भाषा में प्रोढ़ता कम है।

हिन्दी साहित्य में केशव ही ऐसे पहले कवि हैं जो सम्पूर्णतः अलंकारवादी कहे जा सकते हैं और इस दृष्टिकोण से उनका स्थान अद्वितीय है। भाषा, मात्र, कल्पना सभी पर उनका अलंकार, प्रियता की छाप है। सम्वाद लिखने में तो उनको कमाल हासिल है। वे पूरे परिष्ठित हैं। एक-एक शब्द में तीन-तीन अर्थों की सृष्टि करने वाले महाकवि केशव शृंगार रस के अनुपम महाकवि हैं। यद्यपि अलंकार-प्रियता के कारण रसोद्रेक में कहीं-कहीं बाधा पहुँची है और पाण्डित्य प्रदर्शन की धुन में भाषा का प्रभाव-प्रवाह भी क्षीण सा होता दिखाई देता है परंतु यह सभी कुछ सकारण है। उनके सामने केवल अलंकारों की ही सत्ता-महत्ता थी, काव्य की शेष सामग्री का मूल्य उनके लिए कुछ अधिक नहीं था।

प्रश्न ३—“केशवदास जी को सबसे अधिक सफलता संवादों में हुई है” यह कथन कहाँ तक उचित है।

“केशव को संवादों में सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। केशव की वाक्पटुता का प्रमाण हमें उनके संवादों से प्राप्त होता है। रामचंद्रिका में वर्णित सम्वाद पात्रों तथा रसानुकूल भाषा के कारण अत्यधिक सजीव और संरस बन पाये हैं। पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि कीव्यंजना भी सुन्दर बन पड़ी है। रौद्र रस तथा वीर रस के वर्णन में भी केशव ने विशेष कुशलता प्रदर्शित की है। युद्धों के वर्णन अत्यन्त सजीव बन पड़े हैं। राजसी ठाट-वाट के वर्णन में केशव का मन विशेष रूप से रमता था, जीवन को गम्भीर समस्याओं की या तो उन्होंने जान बूझकर उपेक्षा की थी उन तक उनकी दृष्टि नहीं गई।”

रामचंद्रिका में वार्तालाप की सरलता और सजीवता मिलती है। परशुराम-वामदेव के इस संवाद में कितनी सजीवता और सुन्दरता है—

परशुराम—यह कौन का दल देखिये।

वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिये।

परशुराम—यह कौन राम न जानिए।

वामदेव—सर ताड़का जिन मारिये।

रावण-हनुमान संवाद को भी देखिये । वाक्पटुता का बड़ा ही सुन्दर नमूना है । केशव की वर्णन शक्ति की अपूर्वता भी इसमें मिलती है—

‘रे कपि कोन तू, ‘अज्ञ को घातक दूत बली रघुनन्दन जू को ।’
 ‘को रघुनन्दन रे’, ‘त्रिशिरा खरदूषण-दूषण भूषण भू को ।’
 ‘सागर कैसे तरयो’ ‘जस गोपद’ ‘काज कहाँ’ ‘सिय चोरहि देखो ।’
 ‘कैसे बँधायो,’ ‘जु सुन्दरि तेरी छुई दृग केवल पातक लेख्यो ।’
 केशव के संवादों में निम्नलिखित तीन विशेषताएँ हैं—

(१) कवि ने अपने संवादों में पात्र निर्देश को काव्य का अंग नहीं बताया प्रत्युत बाहर से नाम लिख दिये गये हैं ।

(२) दूसरी विशेषता है कि पात्रोचित शिष्टाचार का निर्वाह पूर्णता से हुआ है ।

(३) इन संवादों की तीसरी विशेषता है प्रत्युत उत्पन्न बुद्धि-चातुर्य । परशुराम संवाद ने और रावण संवाद में केशव पूर्ण शिष्टाचार निभाया है । तुलसीदास जी भी इस प्रकार के शिष्टाचार को निभाने में फल नहीं डो सके हैं । तुलसीदास ने हनुमान-रावण संवाद में ‘सठ’, ‘अधम’, ‘मूढ़’ आदि अशुभ शब्दों का प्रयोग किया है क्यों कि वे राज-दरबारों के वातावरण से अनभिज्ञ थे । इसके अतिरिक्त भी कई ऐसे स्थल हैं जहाँ तुलसीदास जी में संवाद सौन्दर्य नहीं मिलता । भरत को लौटने पर वे अपने पिता की मृत्यु के विषय में पूछते हैं । दशरथ की मृत्यु की सूचना, राम-लक्ष्मण और सीता का वन-गमन केशव ने एक ही सवैए में रख दिया है । गागर में सागर ही भर दिया है—

‘मातु कहाँ नृत’ तात गये मुरलो कहि, ‘क्या’ ‘सुत सोक लये ।’
 ‘सुत कौनसो’ ‘राम’, ‘कहाँ अबहैं’, ‘वन लक्ष्मण सीय समेत गये ।’
 ‘वन काज कहा कहि’ ‘केवल मोसुख’ ‘तो को कहा सुख या में भए ।’
 ‘तुमको प्रभुता’ ‘धिक तो को’, कहा अपराध विन सिगरेई हए ।’

इस प्रकार हम देखते हैं कि संवाद-सौष्ठव जो केशवदास जी में मिलता है, वह हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता । इस क्षेत्र में वे अपनी समता नहीं रखते ।

प्रश्न ३—‘केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है।’ इस कथन की समीक्षा करते हुए अपना मत दीजिए।

अथवा

केशव का कवि हृदय नहीं मिला था और उनमें सहृदयता और भावुकता नहीं थी जो तुलसी या सूर में विद्यमान थी।” इस कथन की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए।

उत्तर - केशव की कला और उनके काव्य की आलोचना करते समय जिन पक्षों पर विचार करना पड़ेगा उसमें भाव-योजना बाह्य दृश्य वर्णन; संवाद, अलंकार और रस-परिपाक-कौशल प्रधान है। केशव की रुचि शृंगार की ओर ही प्रधान रूप से रही है। उनके शृंगार के वर्णन में पाण्डित्य प्रदर्शन की रुचि स्पष्ट दिखाई देती है। डा० श्यामसुन्दर दास ने यह लिखा है कि “पाण्डित्य प्रदर्शन की रुचि, चमत्कार विधान की प्रेरणा और शृंगार के नये दृश्यों को अंकित करने में आनाद की भावना ने केशव को काव्योचित कल्पना, समय और धार्मिकता से काम नहीं लेने दिया है।” यह कथन किसी अंश तक उपयुक्त माना जा सकता है। लेकिन सर्वत्र ही ऐसा नहीं हुआ है। “रसिक प्रिया” और “कवि प्रिया” दोनों में ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जिनमें यह सिद्ध हो सकेगा कि केशव ने बड़ी सुन्दर कल्पना से भी काम लिया है और उनको वह दृष्टि भी प्राप्त थी जो एक उच्चकोटि के कवि को प्राप्त होनी आवश्यक है। परंतु उनके साथ कुछ प्रतिबंध भी थे। युग के प्रभाव से और अपने संरक्षकों की रुचि के कारण भी केशव स्वतंत्र नहीं थे। इसके अतिरिक्त उनकी स्वाभाविक रुचि ‘कृष्ट कल्पना की ओर भी। जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है:—

“भाषा बोलि न जानहीं,
जिनके कुल के दास।
भाषा कवि मति मंद भो,
तेहि कुल केशव दास ॥”

उनके पिता काशीनाथ जी और उसके पितामह सभी लोग संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इसलिए केशव की आत्म-भर्त्सना उपयुक्त ही मालूम होती है। उन्होंने सर्वत्र ही पांडित्य प्रदर्शन की अभिरुचि को प्रधानता दी है :—

“रामचन्द्र की चन्द्रिका,
वरनत हौं बहु छन्द ।”

इस प्रकार अलंकार-सम्प्रदायी होने के कारण और पांडित्य प्रदर्शन की प्रबल कामना से प्रेरित कवि केशवदास का काव्य साधारण कोटि से बहुत ऊपर उठ गया :—“कवि को देन चहै विदाई तो पूछिये केशव की कविताई ।” तात्पर्य यह है कि केशव कवियों की परीक्षा की कसौटी बन गये। राजा लोग या धनी-मानी व्यक्ति जिस कवि या चारण को भेंट या दक्षिणा नहीं देना चाहते थे उन लोगों से केशव की कविता का अर्थ पूछा जाता था। जिसे बताने में वे असमर्थ रहते थे और इस प्रकार धीरे-धीरे केशव को “कठिन काव्य का विकट पिशाच” या “काव्य का प्रेत” कहना आरम्भ कर दिया गया। वस्तुतः उनके जैसा क्लिष्ट रचना करने वाला दूसरा कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ।

रामचन्द्रिका की रचना करते समय उनके सामने राम गुण-गान का उद्देश्य गौण था विविध छंदों का प्रयोग मुख्य था और इसीलिए यदि अलंकारों और छंदों का प्रबल पक्षपाती कवि अपने काव्य में सूर और तुलसी के समान सरसता प्रदान नहीं कर सका तो कोई आश्चर्य नहीं है। सर्वत्र ही ऐसी बात भी नहीं है। बहुत से स्थलों पर उन्होंने सहृदयता का परिचय दिया है। विश्वामित्र के साथ जब राम लक्ष्मण जा रहे हैं तब मर्यादा का सरंक्षण करते हुए चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ के नेत्रों में जल भर आता है। परन्तु सम्राट् की सत्ता में सीमा बद्ध होने के कारण वे साधारण व्यक्ति के समान आँसू नहीं बहा सकते और तभी भीतर उठ जाते हैं :—

“राम चलत नृप के युग लोचन,
वरि भरित भै वारिद रोचन ।

पाँयन परि अधि के सजि मौनहिं;

केशव उठि गये भीतर मौनहिं ॥”

इसी प्रकार परिसंख्या अलंकार द्वारा के अवधपुरी का वर्णन करते
कैसा सुन्दर वर्णन केशव ने किया है :—

“मूलन ही की जहाँ अधोगति ‘केशव’ गाइय ।

होम-हुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय ॥

दुर्गति दुर्गन ही जो, कुटिल गति सरितन ही में ।

श्रीफल को अभिलाष, प्रगट कविकुल के जी में ॥”

तात्पर्य यह है कि अयोध्या अत्यंत पवित्र नगरी है । जहाँ किसी की अधोगति नहीं होती, कोई निम्नगा नहीं है । केवल वृद्धों की जड़ें ही नीचे की ओर जाती हैं । नगर में किसी भी प्रकार की मलिनता नहीं है, केवल यज्ञों के धुआँ से श्यामता फैल रही है । दुर्गति किसी की भी नहीं है केवल दुर्गों की ओर जाने वाले मार्ग ही कठिन है (दुर्गति = कठिन मार्ग) । कोई भी वर्क गति से चलने वाला नहीं है, केवल नदियाँ ही टेढ़ी-मेढ़ी चाल से चलती हैं । श्रीफल अर्थात् धन की अभिलाषा भी किसी को नहीं है, केवल कवि लोग ही यदाकदा शृंगार का वर्णन करते समय उरोजों की उपमा श्रीफल से दे देते हैं ।

केशव का अधिकांश जीवन राज-दरबार की सीमित परिधि में व्यतीत हुआ था जहाँ कवि प्रतिभा के विकास के लिए सम्यक् अवसर नहीं था । उनकी दृष्टि राज महलों में घिरी रहती थी । इसलिए वे प्रकृति के दर्शन नेत्र खोलकर स्वतन्त्रता के साथ नहीं कर सके, परिस्थितियों के बन्धन में बंधे हुए, अनेक बाधाओं के रहते हुए भी, एक नवीन विचारधारा से प्रभावित अर्थात् अलंकारों को काव्य की आत्मा मानने वाले ने जो भी कुछ हिन्दी साहित्य को प्रदान किया है वह उन्हें युगान्तरकारी कवि के पद पर बिठाने के लिए पर्याप्त है ।

केशव के संवाद बड़े ही प्रभावशाली हैं और उनकी प्रतिभा के परिचायक हैं । उनमें न केवल प्रवचन-पटुता है वरन् वे सौष्ठव से परिपूर्ण हैं ।

जहाँ तक प्रकृति-वर्णन का प्रश्न है केशव का चित्रण अलंकार प्रधान होते हुए भी नीरस नहीं है। उसमें एक चामत्कार है और आकर्षण की मात्रा भी भरपूर है।

केशव के काव्य में अलंकार की झनझनाहट सहज रूप से पाठक का आकर्षण करती है। कहीं-कहीं जब केशव अलंकारों की अभिव्यक्ति को दूर करके तथा अपने पांडित्य का परित्याग करके, किसी स्थल का वर्णन करते हैं तो अलंकार भावों के उत्कर्ष सहायक बन जाते हैं। अतः केशव को काम नहीं उराचार जा सकता। वे सूर्य और भले नहो शशि हैं। किंतु डडुगन तो अवश्य है। और उडगनों का महत्त्व भी कम नहीं होता।

तुलसी और सूर में केवल हृदय-पक्ष की प्रधानता थी ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके काव्य में अलंकार और छंद विधान का प्रबंध समुचित रूप से दिखाई देता है। फिर भी, यह एक वास्तविकता है कि उन्होंने अलंकार बिठाने की चेष्टा नहीं की है। उनके काव्य में जो गति या प्रवाह है वह मुक्त है और भावानुकूल है। कला-पक्ष विना किसी प्रयत्न के आता हुआ दिखाई दे रहा है। किसी कला-विशेष के उद्देश्य से काव्य-रचना नहीं हुई है।

ऐसा कहना कि केशव के पास कवि-हृदय नहीं था, उचित नहीं है। कहीं-कहीं जहाँ भाव-पक्ष की प्रधानता हो गई है, केशव के स्थल बड़े ही मर्मस्पर्शी बन गए हैं। परंतु, यह निश्चित है कि वे अलंकारवादी कवि थे, इसलिए अलंकारों की स्थिति को वे कभी भी भुला नहीं सके और यही कारण है कि अलंकारों की झनझनाहट में उनका हृदय नहीं नाच सका, केवल उनके कानों में स्वर गूँजते रहे। पांडित्य प्रदर्शन की अभिरुचि ने उनकी सहृदयता पर परदा डाल दिया। भावुकता की चिनगारी पांडित्य की धूल में दबी रह गई।

“केशव केशव असिकरी, जसि अरिहू न कराहि—चंद्रबदन मृग-लोचनी, बाबा कहि-कहि जाहि” की ध्वनि में अपनी वृद्धावस्था के दुख को प्रकट करने वाला कवि सहृदय नहीं होगा या उसके पास भावुक हृदय नहीं होगा—ऐसी बात साधारणतया बुद्धि से बाहर जा पड़ती है।

उनका वातावरण और उनकी दरबारी परिस्थितियाँ अवश्यक ही ऐसी थीं कि वे जनसाधारण के उस मनोमय स्तर तक उतर ही नहीं सके, जहाँ भावों का साधारणीकरण हो जाता है। उनके काव्य में 'चमत्कार को नमस्कार' की प्रधानता है। किसी सीधी-सीधी बात को भी वे ऐसा घुमा-फिरा कर कहते हैं कि व्यक्ति चक्कर में पड़ जाता है और कवि उसे चमत्कृत करके प्रसन्नता का अनुभव करता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रमाण तो यही है कि—'कवि के देने न चहै विदाई पूछिये केसव की कविताई।' अर्थात् बड़े-बड़ों के हाथ भी कुछ लगता नहीं।

जहाँ तर्क केशव के काव्य का प्रश्न है, वे 'कठिन काव्य के विकट पिचाश' कहे जाते हैं। काव्य में क्लिष्टत्व भी दोष माना गया है। उनकी अभिरुचि इस ओर सदा-सर्वदा रही। भाषा-दोष तो कम होना ही चाहिए क्योंकि वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। फिर भी, इतना तो माना ही जाने योग्य है कि 'एक ही रात्रि में रामचन्द्रिका' जैसे महान् ग्रंथ की रचना करने वाला समर्थ महाकवि केशव जैसा अनुपमेय महा-कवि दूसरा न हुआ और न होगा। अलंकारों के आकार में, पाण्डित्य के प्रवाह में, केशव कहीं-कहीं भूले-भटके हों, तो सही, परन्तु उनके काव्य में भाव-पक्ष भी है और यथास्थान सहृदयता तथा भावुकता के दर्शन भी होते हैं।

व्याख्याएँ

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कवि कुल विद्याधर.....तरंगिनी सोभसनी

प्रसंग—कवि मुद्रा, अलंकार से अयोध्या और देवपुरी का श्लेषशब्दावली से एक साथ वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—(१) अयोध्यापुरी में कवियों के कुल हैं, विद्वान (विद्याधर) समस्त समस्त कला विज्ञ, श्रेष्ठ वेश में बड़े बड़े राजा, मुख देने वाला गुणों के स्वामी, योग्य हाथी घोड़ों के रत्नक, अनगिनती योद्धा व सहायक, सेनापति, पंडित, कल्याणमय पुरुष, गुरु, मन व बुद्धि के धनी न्यायाधीश हैं। अत्यन्त शुभ मन चाहा दान देने वाली, करुणामयी तथा शोभा

से युक्त सरयू है। (ध्यान से देखने पर इसमें क्रमशः शुक्र, गन्धर्व चन्द्रमा, कुवेर, गणेश, महादेव, सूर्य, कार्तिकेय, बुद्ध नक्षत्र, मंगल नक्षत्र, गुरु, बृहस्पति, यम कामधेनु या कल्प वृक्ष के अर्थ भी निकलते हैं अतः यहाँ मुद्रालंकार है।

शब्दार्थः—कवि=शुक्राचार्य। विद्याधर=देव विशेष। कलाधर=चन्द्रमा। राजकाज=कुवेर। गणपति=गणेश। सुखदायक=इन्द्र। पशुपति महादेव। सूर=सूर्य। सेनापति=षडानन। बुधजन=बुध। मंगल=मंगल ग्रह। गुरु=बृहस्पति। धर्मराज=यमराज। मनसाकर=कलश-वृक्ष, कामधेनु। करुणामय=विष्णु। सुरतरंगिनी=आकाश गंगा।

व्याख्या—(२, जिस प्रकार स्वर्ग में शुक्राचार्य, विद्याधर तथा चन्द्रमा हैं उसी प्रकार अवधपुरी में शुक्राचार्य जैसे विद्वान हैं, विद्याधरों के समान करता है।

अलंकार—परिसंख्या।

चन्द्रमा के समान कलाविद् हैं। जैसे देवपुरी में कुवेर हैं वैसे ही अवध में श्रेष्ठ क्षत्री हैं। जैसे वहाँ गणेश, इन्द्र तथा शिव और सूर्य हैं वैसे ही यहाँ भी सुख देने वाले शासक योग्य पशुपालन और शूरवीर योद्धा हैं तथा अनेक सहायक हैं जिनकी गिनती नहीं हो सकती है। जैसे स्वर्ग में षडानन, बुध, मंगल, बृहस्पति तथा बुद्धिमान यमराज हैं वैसे ही यहाँ भी सेनानायक, पंडित, मंगलपाठी ब्राह्मण, योग्य शिक्षक तथा बुद्धिमान न्यायाधीश हैं। जैसे वहाँ कल्पवृक्ष, कामधेनु, विष्णु, तथा आकाश गंगा है वैसे ही यहाँ अनेक दयालु दानी हैं जो चायक को मनवांछित दान देते हैं। और नगर के समीप ही पवित्र तथा सुन्दर सरयू नदी बहती है। अतः एव अवधपुरी देवपुरी के समान है।

अलंकार—मुद्रा

मूलन ही की.....अगस्त्य से।

प्रसंग—कवि अयोध्या के वैभव का वर्णन कतर रहा है—

व्याख्या—केशवदास जी कहते हैं अयोध्या में अभोगति (अवनति) केवल मूलों (जड़ों) की ही है, नगर को मलिन करने वाले केवल होमानि

के ही धूम हैं, सरिताओं में ही दुर्गति दुर्गण व वक्रता है और श्रीफल (धन, पयोधर) की अभिलाषा केवल कवियों में ही है ।

अयोध्या में केवल पीपल का पत्ता ही चपल स्वभाव का है, नारी विधवा नहीं है, अपितु केवल बनी (वाटिका) ही विधवा (पत्तो से रहित) है इस प्रकार के नगर को देखकर विश्वामित्र मोहित हो गए । (परि-संख्या अलंकार) नगर चतुर लोगों से युक्त है, जो मोह रूपी अंधकार के लिए सूर्य के समान, तृष्णा रूपी लता के लिए कुठार के दृश्य, व लोभ रूपी समुद्र के लिए अगस्त के समान हैं । चतुर लोग इन वस्तुओं से परे हैं ।

विधि के.....गंगा कै सो जल है ।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियों में केशव दशरथ के महत्व और वैभव का वर्णन कर रहे हैं—

व्याख्या—दशरथ ब्रह्मा के समान हैं जिन्होंने राजहंस (मराल पक्षी, व राजा) को विमान कृत (विमान बनाए हुए है; अधीन कर रक्खा है) कर दिया है; नाना प्रकार के विबुध (देवता; परिडत) से युक्त हैं व मेरु के समान अचल हैं; उनकी दीप्ति सातों द्वीप तक प्रकाशित है और वे दूसरे दूसरे दलीप के समान है जिनमें सुदक्षिणा (दिलीप की स्त्री अच्छी दक्षिणा) का बल है; प्रसिद्धि का सागर है; बहु बाहिनी (नदी, सेना) के पति है; छनदान प्रिय (क्षण-क्षण पर दान देना प्रिय है, क्षणदा—रात्री जिसे प्रिय नहीं अर्थात् सूर्य) व स्वच्छ सूर्य है । सब प्रकार से राजा दशरथ समर्थ हैं और अपने पूर्वजों की रीति व नीति के वैसे ही अनुगामी हैं जैसे गङ्गा जल भागीरथ के दिखाए मार्ग पर आज तक चल रहा है ।

अलंकार—श्लेष, उल्लेख उत्प्रेक्षा ।

अलंकार—रूपक, अनुप्रास, काकु वक्रोक्ति ।

केशव ये.....सुभ जोगमयी है ।

प्रसंग—विश्वामित्र राम को जनक का परिचय दे रहे हैं—

व्याख्या—केशवदास जी कहते हैं कि विश्वामित्र ने कहा कि मिथिला के राजा है जिन्होंने संसार में कीर्ति की बेल को बो रक्खा है । दान

तथा कृपाण के साधनों से इन्होंने सारी बसुधा को अपने हाथ में रक्खा है। तीनों लोकों में छुः अंग वेद-शिला, कल्प व्याकरण, ज्योतिष निरुक्त छन्द) सात अङ्ग व (राजनीति—राजा, मन्त्रों मित्र कोष, देश, दुर्ग, सेना) आठ अंग अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि) के द्वारा करी है। वेद त्रयी (ऋग, यजुर व साम) व राज्यश्री में परिपूर्ण होते भी वे पक्के योगी हैं।

अलंकार—रूपक।

उत्तम गायत्री साँचौ सरासन कीनी।

प्रसंग—केशव राम के धनुष चढ़ाने के लाघव का वर्णन कर रहे हैं—

व्याख्या—राम ने कमर में पटका बाँधा और लीला खेल-खेल) से ही महादेव का धनुष साधा, उनके कर पल्लव से तनिक छूते ही, फूल की तरह उसके दो टुकड़े हो गए। उस उत्तम गाय धनुष को जब राम ने हाथ में ले लिया तब वह सनाथ हो गया। जब निर्गुण से गुणवन्त किया (प्रत्यञ्चा चढ़ाई) तब असंख्य सन्तों को सुख हुआ। जब उसे ताना तब अपने नवीन तीक्ष्ण कटाक्ष का वाण नराच) उस पर रख दिया। इस प्रकार राजकुमार (राम ने प्रेम दृष्टि से देखकर उस महादेव के धनुष को सत्य ही शरासन बना दिया (क्योंकि राम ने कटाक्ष रूपी वाण उस पर रख दिया।

अलंकार—यमक, तुल्यपोगिता (सुख दीनों), रूपक।

भोहैं सुरचाप हरषि हिय आई है।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द में केशव वर्ण और कालिका का श्लेष शब्दावली से एक साथ वर्णन कर रहे हैं—

व्याख्या—(कालिका पक्ष का अर्थ) इन्द्रधनुष ही जिसकी भोहैं है, घने बड़े बादल (पयोधर) ही जिसके उन्नत कुच है, विद्युत छटा ही जिसके आभूषण की चमक है, जिसने अपने मुख से चन्द्रमा की शोभा दूर कर दी है, जिसके निर्मल नेत्रों से, कमल की पंखड़ियाँ शोभा दलित हो गई हैं। केशवदास कहते हैं जिसने मतवाले हाथियों की चाल छीन ली है, जिसके विष्णुओं का शब्द मुखदायी है, नीले वस्त्र से युक्त जो नीलकण्ठ

(महादेव) की मति को मोहित करती है वही कालिका देवी (पार्वती) है
या वर्षा है ।

(वर्षा पक्ष में) इसमें अनेक भय (भौहें) हैं, इन्द्रधनुष है, घमण्डी
वादल की घटा है, भूमि व आकाश में चंचल विजली की चमक है, चन्द्र-
की प्रभा सहज ही दूर हो गई है, नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं (नैन अमल
कमल दलित) हो गये हैं, जलाशय काई रहित (नकाई) हैं, जल की
प्रखर धारा ने धूल को बहा दिया है । क = जल , व आवागमन रोक
दिया है सारा देश सुख प्रद हंस रहित है, आकाश बादलों से युक्त है
जिसे देख कर भौरों (नीलकण्ठ) की मति मोहित हो जाती है । यह
कालिका है या वर्षा है ।

विशेष— आचार्य प्रो० जगन्नाथ जी तिवारी का अर्थ भी उल्लेखनीय
है । आप केशव साहित्य के उद्भूट विद्वान् हैं :—

‘ यह वर्षा है अथवा कालिका जो इस प्रकार हृदय में उल्लसित होकर
आ गई है । वर्षा में जो इन्द्र धनुष है वही मानो कालिका की भौहें हैं ।
वर्षा में जो उमड़ते हुए बादल हैं वे मानो कालिका के उमड़ते हुए स्तन
हैं । वर्षा में जो विजली का प्रकाश है वही मानो कालिका के आभूषणों
की ज्योति है । वर्षा में कमलों की शोभा नष्ट हो गई है और नदियाँ
निर्जल नहीं हैं वही मानो कालिका ने अपने नेत्रों की शोभा से कमलों की
शोभा को फीका कर दिया है । वर्षा ने प्रबल हथिनियों की गति को हर
लिया है (वर्षा में हथिनी द्वारा आक्रमण न होने के कारण ऐसा कहा
गया है । यही मानो कालिका ने हथिनी की चाल को हर लिया । स्त्री
की चाल की उपमा प्रायः हथिनी की मस्त चाल से देते हैं । वर्षा सुन्दर
इंसों की मधुर ध्वनि से रहित है और कालिका के मोती जड़े बिच्छुओं की
ध्वनि सुख देने वाली होती है अतः दोनों ही “मुकुद सुहंसक सबत सुख-
दायी” होती हैं । वर्षा में आकाश मेघाच्छन्न रहता है और कालिका
सुन्दर वस्त्रों से आवृत्त रहती है अतः दोनों ही अम्बर बलित हैं । वर्षा
नीलकण्ठ (मयूर) के मन को मुग्ध करने वाली होती है और कालिका
भी नीलकण्ठ (महादेव) के मन को मुग्ध करती है । वर्षा तथा कालिका

की उपयुक्त इन समान विशेषताओं के कारण ही वर्षागमन पर सन्देह होता है कि यह वर्षा है अथवा कालिका ।

अलंकार—समंग श्लेष ।

मिलि.....कमला पति को ।

प्रसंगः—सीता की खोज करते हुए राम पंपा सरोवर पर पहुँचते हैं । वहाँ की सुगन्धित पवन के लगने से, तथा कमलों को देखकर राम का विरह उदीप्त हो जाता है । लक्ष्मण पंपासर को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं—

व्याख्या—यह सुगन्धित मलय पवन चलकर जो राम को विमूर्छित कर रही है । वह तो उचित ही है क्योंकि वह तो जड़ है । इसमें उसका किंचित भी दोष नहीं है । चन्द्रमा को देखकर राम विह्वल हो उठते हैं । यह भी ठीक ही है । क्योंकि चन्द्रमा रात्रिचर है । उसकी निशाचरों की तरह उलटी रीति है । अतः उसको भी दोष देना व्यर्थ है । और जो यह शुक आदि पत्नी सीता का नाम लेकर राम का विरह उदीप्त कर रहे हैं । इसका भी दोष नहीं है । क्योंकि पत्नी होने के कारण वे राम के हृदय की दशा को समझ सकते । परन्तु हे पंपासर ! तुमको तो ऐसा नहीं करना चाहिए । तुम्हारा और राम का तो घनिष्ठ सम्बन्ध है । तुम कमला कर हो अर्थात् तुम लक्ष्मी के पिता हो और राम लक्ष्मी का पति हैं । अतः तुम्हारा और राम का सुसर और जामाता का सम्बन्ध है । तुमको तो राम का दुःख दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

विशेषः—विप्रलम्भ शृंगार उदीपन रूप में प्रकृति का चित्रण है ।

कलहंस.....अवलंबि हयै ।

प्रसंग—वर्षागम में राम का वियोग अत्यधिक उदीप्त हो उठा । वे विरह में उद्दिग्ग्न होकर कह रहे हैं—

व्याख्या—कुछ दिनों तक तो हंस, चन्द्रमा, खंजन और कमल को देखकर सीता के वियोग में किसी प्रकार धैर्य धारण करके वियोग के दिन व्यतीत करते रहे । हंसों की सुन्दर चाल में सीता के चरणों की मन्द गति का अनुभव होता था । चन्द्रमा को देखकर सीता-मुख-दर्शन का

आनन्द मिलता था। खंजन पत्नी सीता के नेत्रों की स्मृति कराते थे और कमलों को देखकर सीता के चरण नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाते थे। किन्तु वर्षा ने आकर सीता के शरीर के इन सभी उपमानों को खोज खोज करके दूर कर दिया। अब मेरे लिए कोई सहारा नहीं रहा और न कोई हिम्मे ही दिखाई देता है। अतः बिना प्यारी सीता के अब हमारे प्राण किस प्रकार रहेंगे।

विशेष—१—यहाँ पति के द्वारा पत्नी के चरणों का स्मरण आर्य मर्यादा के विरुद्ध है।

अलंकार—यथासंख्य, छेकानुप्रास, कैवतापन्हुती और काकुवक्रोक्ति।
खोरध दरीन—जपत हैं।

शब्दार्थ—दरीन—गुफाओं। केसरी = सिंह। केका = मोर।

प्रसंग—हनुमान जी सीता जी की दशा को देखने के पश्चात् राम की दशा का चित्रण सीता जी के समक्ष इस प्रकार कर रहे हैं—

व्याख्या—हे माता! आपके वियोग में राम अत्यन्त दुखी हैं। वे सिंह के समान बड़ी-बड़ी गुफाओं में ही निवास करते हैं अर्थात् आपके वियोग के कारण प्रकृति की शोभा को भी नहीं देखते। केशर की क्यारी को देखकर उसी प्रकार भय से युक्त हो जाते हैं जिस प्रकार हाथी शेर को देखकर डर जाता है। दिन की शोभा को उसी प्रकार हीन देखते जिस प्रकार उलूक पक्षी सूर्य को नहीं देखता (चंद्रमा की ओर ही चकोर पक्षी एक टक दृष्टि से देखा करता है, सूर्य की ओर नहीं देखता। वे चक्रवा के समान चंद्रमा को देखकर चौगुने चंचल हो जाते हैं। चंद्रमा को देखकर उन्हें आपको चंद्र मुख की ध्यान हो जाता है) वे मोरों का शब्द सुनकर उसी प्रकार छिप जाता है। घनघोर बादलों की गड़गड़-हट को उनकर उतना ही दुख होता है जितना जवासे का होता है। जिस तरह भौंरा चक्र काटता फिरता है, उसी प्रकार वे जंगलों में भटकते फिरते हैं और वे योगी के समान रात को जगाते रहते हैं। (आपके वियोग में उन्हें रात में भी नींद नहीं आती) राम चातक पक्षी के समान ही आपका नाम रटा करते हैं।

नोट—चकोर के स्थान पर उलूक पाठ सही है ।

अलंकार—उपमा से पुष्ट रूपा ।

को है दमयंती.....बारि-बारि डरीचे ।

प्रसंग—इस पद में कविवर केशवदास जी ने सीता जी के सौंदर्य का वर्णन किया है—

व्याख्या—सीता जी की सुन्दरता के सामने दमयंती, इन्दुमती और रति क्या है ? यदि इनको दिन रात विजली से ही सजाया जावे तो भी वे सीता जी के समान छविमान नहीं हो सकती । अर्थात् सीताजी की सुन्दरता में ये कुछ भी नहीं हैं । केशवदास जी कहते हैं कि सीता जी के सामने कमल और अग्नि की आभा भी लज्जित हो जाती है । सुवर्ण बेचारा तो असुन्दर प्रतीत होता है । अनुपम कामदेव भी उपमा निरूपण करते समय बिना शरीर वाला होने के कारण कुछ जँचता नहीं है और अनेक रूप धारण करने वाला चंद्रमा तो उनके सामने बहुरूपिया-सा प्रतीत होता है । सीता जी के रूप की तुलना देवांगनाओं से क्या की जावे ? वे तो ऐसी सुन्दरी हैं कि रूप की जितनी भी उपमाएँ हैं वे सब उनके ऊपर न्यौछावर कर दी जावें ।

अलंकार—सम्बंधातिशयोक्ति ।

विहारी

प्रश्नोत्तर—

प्रश्न १—विहारी के काव्य की विशेषताएँ उनके भाव-पक्ष और कजापक्ष को दृष्टि में रखते हुए बताइए ।

उत्तर—भाव-पक्ष विहारी के काव्य का प्रधान स्वर शृंगार है । विहारी ने रीतियुग की उस जनरुचि को अपने काव्य में आश्रय दिया है जो जनरुचि घर की चहार दीवारी में सिमिट कर, आर्थित और आध्यात्मिक दृष्टि से जर्जर अपने जीवन को रसमय बनाने के लिए भोग और विलास की केन्द्र बिन्दु, नारी के अंगों से उलझ रही थी । जीवन के प्रति

हस भोगवादी दृष्टिकोण ने काम तो सार्वभौम उपासना और वासना-परक ऐहिक शृंगार को जन्म दिया । बिहारी की सतसई में शृंगार के ऐसे अनेक नग्न चित्र मिलेंगे ।

बिहारी के शृंगार वर्णन में प्रेम का उदात्त आदर्श नहीं मिलता । उसमें न तो प्रेमी और प्रेमिका का व्यक्तित्व ही उभर पाया है और न उसमें प्रेमी जीवन की अनेकरूपता है । मातृत्व को महिमा से मण्डित नारी यहाँ जैसे अपनी सब विशेषताओं को खो बैठी है और वह केवल विलास और भोग की उपकरण मात्र बन गई है । यही कारण है कि बिहारी की नायिका अपने पुत्र का मुँह किसी वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर नहीं चूमती वरन् इसलिए चूमती है कि प्रियतम ने अभी उसका चुम्बन किया है—

बिहंसि बुलाइ, विलोकि उत,
प्रौढ़, तिया रस घूमि ।
पुलकि पसीजति पूत कौ,
पिय चूम्यौ मुँह चूमि ॥

बिहारी के शृंगार में सूक्ष्म आन्तरिकता नहीं है और न वह सर्वथा एकांतिक, स्थूल और शारीरिकता प्रधान है । उसमें प्रेमी प्रेमिकाओं के शारीरिक हाव भाव, चेष्टा, मुद्रा, क्रीड़ा, चुहल, विनोद की तो अच्छी व्यंजना है पर प्रेमी हृदय की अंतर्दशा के चित्रण का प्रभाव है ।

संयोग-पक्ष—बिहारी का शृंगार-वर्णन में गृहस्थी के जीवन का रस भरपूर है । घर की चहारदीवारी के भीतर नायक नायिका के बीच जिस प्रेम का आदान-प्रदान होता है, उसका चित्रण अनुभूतियों की सच्चाई से युक्त और बड़ा मोहक है । सत्य तो यह है कि रीतिकाल के बिहारी जैसे कवियों ने नारी को उसके सर्वांगीण रूप में देखा था । उसके अंगों को सराहा था, उसके स्वभाव को समझा था और उसके जीवन के साथ क्रीड़ा की थी । कभी उसे गृहकार्य करते देखा, कभी छिपकर उसे स्नान करते देखा, कभी जल भरते देखा और कभी अपने ही अंगों की सराहना

करते देखा । आँख मूँदिवो' खेलने की आयु से लेकर निसंकोच 'बालम सों दग जोरने' तक की परिस्थितियों का उन्होंने गहरा अनुभव प्राप्त कर लिया था । नायक नायिकाओं के मिलन, हास्य विनोद, नाना प्रकार की केलि-क्रीड़ाओं, मान, अभिसार रति आदि संयोग-शृंगार के विविध प्रसंगों को लेकर बड़े चुभते-दोहे कहे हैं । नायक नायिकाओं को मुद्राओं, चेष्टाओं और हाव-भावों की व्यंजना बढ़ों सरस और विरग्वतापूर्ण है । इस प्रकार के वर्णन के लिए जिस प्रकार को सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति अपेक्षित है, बिहारी में वह पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था । संयोग-शृंगार की विविध चेष्टाओं, मुद्राओं और हाव-भावों को लेकर उन्होंने जो सफल चित्र खींचे हैं, वे सहृदय पाठक के सामने वैसा ही वातावरण खड़ा कर देते हैं । एक-एक दोहे में उन्होंने अगणित भावों लड़ी पिरोई हुई है, अगणित चेष्टाओं और क्रियाओं का उद्घाटन किया है । नीचे के दोहे में तो अमिलाष, गर्व, हर्ष, अमर्ष, स्मित आदि अनेक भाव एक साथ गुथे हुए हैं—

कहत, नटत, खिभत,
मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौन में करत हैं,
नैनन हीं सों बात ॥

इसी प्रकार प्रेमिका के नयनों से विधे नायक कृष्ण की व्याकुलता और अस्तव्यस्तता का चित्र देखिए । उनकी मुरली कहीं है, पीतम्बर कहीं है मुकुट और बनमाला कहीं छिटके पड़े हैं—

कहा लड़ैते दग करै,
परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट,
कहुँ मुकुट बनमाल ॥

अनुभाव का कैसा सच्चा विधान है । इसी प्रकार नायक को खिजाने और परेशान करने में आनंद लेती हुई नायिका की चेष्टाएँ देखिए—

सं
फाग,
की पर
कहा है
न
उसका
पुलकि

इन
रूप वय
रस का
आगे हैं
उनकी
हैं और
नारी
गई है
प्रो
है । क
श्रागे
नहीं ह
बिहारी
प्रधानता

बतरस लालच लाल के,
 मुरली धरी लुकाय ।
 सौँह करे भौंहनु हंसै,
 देन कहे नटि जाय ॥

संयोग-शृंगार की विविध क्रीड़ाएँ जैसे आंखमिचौनी, जल क्रीड़ा, फाग, झूलने की क्रीड़ा, शयनागृह में सोने के झूठे वहाने और नायिका की परस्परा चुहल इन सब विविध प्रसंगों को लेकर बिहारी ने बहुत कुछ कहा है ।

नायिका सोने का वहाना करके शयनागृह में लेट रही है । नायक उसका वहाना देख रहा है । अन्त में नायिका के ओठ फड़क उठे, शरीर पुलकित हो गया, और नेत्र खुलकर के फर जुड़ गये—

मुख उधारि पिउ लखि रहत,
 रह्यौ न गौ मिस-सैन ।
 फरके ओठ उठे पुलक,
 गए उधरि जु रि नैन ॥

इन विविध क्रीड़ाओं के चित्रण से अधिक बिहारी ने विभाव पक्ष का रूप वर्णन विशेष रूप से किया है । समस्त रीतिकालीन साहित्य ही रूप-रस का साहित्य है, जिसमें बिहारी जैसे रसिक कवि तो इस दृष्टि से सबसे आगे हैं । उनके प्यासे नैन रूप-सौंदर्य का पान करते हुए अघाते ही नहीं । उनकी सूक्ष्मदर्शी निगाह ने सौंदर्य के वारीक से वारीक संकेत को पकड़ा है और ऐसा प्रतीत होता है मानों जैसे उनके काव्य की सम्पूर्ण चेतना नारी देह के अंगों की शोभा और आभूषणों की चकाचौंध में बँधकर रह गई है ।

प्रोम अनुरूपण की भाँति बिहारी की यह सौंदर्य-भावना भी बहिरंग है । कवि की दृष्टि शारीरिक सौंदर्य पर ही रीझकर रह गई है, इसके अंगे मन के सूक्ष्म सौंदर्य का उसने अपनी वाणी प्रदान नहीं की । यही नहीं हृदय पर पड़ने वाले इस रूप-सौंदर्य के विविध प्रभावों का वर्णन भी बिहारी ने नहीं किया । जहाँ प्रभाव वर्णन है भी वहाँ भी रूप वर्णन प्रधानता लिए हुए है ।

प्रेमी को प्रिय की प्रत्येक वस्तु आलवन रूप बन जाती है। उसके स्पर्श से ही उसे प्रिय सुख सा अनुभव होता है। नायक जिस पतंग का उड़ा रहा है, नायिका के लिए उस पतंग की छाया ही कितनी प्रिय है कि उसके लिए पागल के समान वह आँगन-आँगन दौड़ती फिरती है—

उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह ।

बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति . छुबीलो छाँह ॥

प्रेम का कितना व्यापक रूप है। इसी प्रकार प्रियतम के छुल्ले को प्राप्त करने वाली प्रेयसि की प्रेम-मग्न चेष्टाओं का वर्णन कितना हृदय-प्राही है—

छला छुबीले लाल कौ, नवल नेह लहि नारि ।

चूवति चाहति लाइ उर, पहिरत धरति उतारि ॥

एक क्षण के लिए भी प्रेयसी अपने प्रियतम का वियोग नहीं चाहती। प्रेमी बिना तो स्वर्ग भी उसके लिए नरक तुल्य है—

जो न जुगति प्रिय मिलन की, धूरि मुकति मुँह दीन ।

जो लहिए संग सजन तो, धरक नरक हूँ कीन ॥

प्रेम की पूर्णता इसी में है कि प्रेमी और प्रेमिका में कोई अन्तर न हो। प्रेम की चरम अवस्था को पहुँच कर नायिका स्वयं अपने को नायक समझ बैठती है—

पिय के ध्यान गही गही, रही वही हूँ नारि ।

आपु आपु हीं आरसी लखि, रीकत रिझवारि ॥

प्रेम का इससे अधिक ऊँचा आदर्श और क्या होगा? बिहारी के काव्य में ऐसे और भी अनेक उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं। ये इस बात को निर्विवाद रूप से स्पष्ट करते हैं कि बिहारी प्रेम के सच्चे स्वरूप की व्यंजना करने में कितनी से पीछे नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि बिहारी रीतिकालीन परम्परागत लोक को छोड़कर घनानंद, ठाकुर बोधा आदि कवियों की भाँति शृङ्गार के क्षेत्र में आदर्श और विशुद्ध प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्घाटन करते तो निश्चय ही उनके काव्य का सौन्दर्य और भी निखर उठता ।

विहा
गया
परिच
हृदय
प्रेम
जाय
हृदय
वनक
विरा
कवि
उठत
सखि
हैं।
इधर

ऐसा
की ह
साहि
की इ

वियोग-वर्णन—विहारी के वियोग-वर्णन में स्वाभाविकता नहीं है। बिहारी का वियोग-वर्णन चमत्कार प्रदर्शन का साधन मात्र बनकर रह गया है। उसमें विहारी ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति का तो सुन्दर परिचय दिया है पर भाव सौन्दर्य से उसे अछूता ही रखा है। उसमें हृदय की अनुभूति कम मस्तिष्क का योग अधिक है। इसीलिए उसमें प्रेम की विरह जन्य अनुभूतियों का यथार्थ प्रकाशन नहीं है। सूर और जायसी के साहित्य में व्यञ्जित विरही हृदय की जो दारुण कथा पत्थर-हृदयों को रूप देने की क्षमता रखती है, विहारी के लिए वह तमाशा बनकर रह गई है। यही कारण है कि विरह ताप से दग्ध विहारी की विरहिणियों की दशा को देखकर हमारा हृदय द्रवित नहीं होता, वहाँ कवि के उक्ति चमत्कार और ऊहात्मक पद्धति पर बाह-बाही अवश्य कर उठता है। विहारी को नायिका विरह के ताप से ऐसी दग्ध है कि सखियाँ शिशिर की रात्रि में भी गीले वस्त्र लपेट कर उसके पास जाती हैं। वह इतना कुशकाय हो गई है कि सांस लेने के साथ छूः सात हाथ इधर-उधर हो जाती है, जैस हवा के झोंकों में कोई तिनका उड़ रहा है—

आड़े दे आले बसन,
जाड़े हूँ की रीति ।

साहस कैं सनेह बस,
सखी सबै ढिग जाति ॥

इति आवति चलि जात उत
चली छुसातक हाथ ।

चढ़ी हिंडोरे सी रहै,
लगी उसासनु साथ ॥

विरह की ऐसी ऊहात्मक व्यंजना बिहारी के काव्य में खूब मिलेगी। ऐसा प्रतीत होता है जैसे विहारी ने इन दोहों की रचना उर्दू के शायरों की होड़ में की हो। क्योंकि विरह की ऐसी चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ फारसी साहित्य में अधिक पाई जाती हैं। अनुभूति की सच्चाई से कोसों दूर विरह की इस अतिशयोक्तिपूर्ण व्यंजना का एक और भी कारण है। बिहारी

प्रेमी हृदय नहीं थे, रसिक जीव थे। संयोग शृंगार की केलि क्रीड़ाओं से तो उनका निकट का परिचय था, पर विरह की दाखल व्यथा उनके भोगवादी दृष्टिकोण के अनुकूल नहीं थी। इसीलिये विप्रलम्भ शृंगार की योजना में विहारी अधिक सफल नहीं हो सके।

विहारी का विप्रलम्भ शृंगार जहाँ उक्ति चमत्कार के बोझ से दबा न होकर स्वाभाविक है वहाँ उसके चित्र बड़े मर्मस्पर्शी हैं। नीचे की पंक्तियों में विरहिणी की शारीरिक दशा और विरह जन्य अनुभूतियों का कैसा मार्मिक चित्रण है—

करके मीड़े कुसुम लौं,
गई विरह कुम्हिलाइ ।
सदा समोपिति सखि नूँ हूँ,
नोठि पिछानी जाइ ॥

इसी प्रकार प्रियतम के सदेशों को प्राप्त कर मन की क्या दशा होती है—

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर,
उर लगाइ भुज मैटि ।
लहि पाती पिय की लखति,
बाँचति घरति समेटि ॥

पर विरह की ऐसी स्वाभाविक व्यंजना विहारी में अधिक नहीं है।

प्रकृति-वर्णन—रीतिकालीन परंपरा का निर्वाह करते हुए विहारी ने भी शृंगार के उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। उनका षट-श्रुतु वर्णन इसी प्रकार का है। पर प्रकृति-चित्रण के लिए रचे गये विहारी के अनेक दोहे इस बात के प्रतीक हैं कि उन्होंने प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार हुए उसमें व्याप्त भावनाओं का भी निरूपण किया है। वसन्त श्रुतु का कैसा स्वाभाविक वर्णन है।

छुकि रसाल सौरभ सने,
मधुर माधवी गंध ।
ठौर ठौर भूमत भूपट,
भौर भौर मधु अन्ध ॥

यही नहीं बिहारी ने प्रकृति का मानवीकरण भी किया है। कुञ्जर के रूप में समीर का मूर्तिमान चित्र देखिये—

रनित भृङ्ग घंटावली, भरत दान मधु नीर ।

मंद-मंद आवत चलयौ, कुञ्जर कुँज समीर ॥

इसमें सन्देह नहीं कि बिहारी के कुछ प्रकृति चित्र तो आधुनिक काव्य की तुलना में रखे जा सकते हैं। उनमें कला की सूक्ष्म बारीकी के साथ-साथ वैसी ही मूर्तिमत्ता और चेतना विद्यमान है जो आज के काव्य में दृष्टिगोचर होती है। ग्रीष्म और छाया के ये चित्र इसके स्पष्ट प्रमाण हैं—

नाहिन ये पावक-प्रवल लुत्रैं, चलत चहुँ पास ।

मानहुँ विरह बसंत कै, ग्रीष्म लेत उसास ॥

बैठि रही अति सघन बन पैठि सदग-तन माँह ।

निरखि दुपहरी जेठ की छाहौँ चाइति छाँह ॥

कला-पक्ष—बिहारी जैसी कला की सूक्ष्म कारीगरी का कौशल अन्य किसी कवि में है ही नहीं है। साधारण से साधारण सी बात भी उनकी कला के स्पर्श से च्युतिमान हो उठी है। इस दृष्टि से उनकी प्रतिभा निश्चय उस पारस पत्थर के समान है जिसके छूने से लोहा भी सुवर्ण बन जाता है। यही कारण है कि नीति और भक्ति के साधारण कथन में भी बिहारी को कला के संयोग से इतने सरस और इतने मार्मिक बन पड़े हैं, अन्य मुक्तकों का तो कहना ही क्या? उनका हर शब्द उनकी इस खूबी को प्रकट करता है। शब्दों की मणि-माला में भाव सूत्रों को किस प्रकार पिरोना चाड़िये, कथन के बाँकेपन से सहृदय पाठकों को किस प्रकार रस-मग्न किया जा सकता है, बिहारी इस बात में बड़े निपुण और काव्य-कला के पंडित थे। नपे-तुले शब्दों में भावों की कसावट देखनी हो तो बिहारी के दोहों का रसपान करिए। उन जैसा उक्तिवैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य अन्यत्र नहीं मिलेगा। उनके हमी वैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य पर साहित्यकार लटपटू होते आए हैं। यही बिहारी का बिहारीपन है, यही उनके काव्य-कला की सबसे बड़ी विशेषता है।

अलङ्कार—अलङ्कारों की जगर मगर से कविता-कामिनी का शृङ्गार करना रीतिकालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रही है। सम्भवतः इसी लिए मिश्रबन्धुओं ने रीतिकाल को अलंकरणकाल कहा है। बिहारी भी अलंकारों की चमक-दमक पर रीके हैं, पर अलंकार उनके काव्य के साध्य नहीं साधन रूप में प्रयुक्त हुए हैं। केशव की भाँति उनके काव्य का सौन्दर्य अलंकारों से ढका हुआ नहीं है वरन् उनके संसर्ग से वह और भी निखर उठा है। भावोत्कर्ष में सहायक ही हैं, बाधक नहीं।

शब्दालंकार की अपेक्षा बिहारी के अर्थालंकार अधिक सौन्दर्यशाली हैं। शब्दालंकारों में कवि दृष्टि चमत्कार प्रिय अधिक है। इसीलिए शब्दालंकार प्रधान दोहों से रस की अनुभूति नहीं होती। रचना चमत्कार पर ही दृष्टि अटक जाती है। अर्थालंकारों में बिहारी ने साम्यमूलक अलंकारों विशेषतः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का अधिक सहारा लिया है। इस सब के बड़े सुन्दर उदाहरण सतसई से दिये जा सकते हैं।

छन्द—बिहारी ने केवल दोहा जैसे छोटे छन्द में अपनी रचना की है। और इस लघु छन्द के माध्यम से ही बिहारी ने जिस कवित्व शक्ति का परिचय दिया, वैसा अन्य कवियों द्वारा बड़े-बड़े कवित्त और सवैयो द्वारा भी सम्भव न हो सका। इन छोटे से दोहों में बिहारी ने विशाल भावों की सृष्टि की है और यथार्थ में वे गागर में सागर के समान हैं। दोहे के थोड़े से शब्दों में ही अनेक अलंकार अनेक भाव, अनेक व्यापार एक साथ गुथे हुए हैं फिर भी उन दोहों की गति का प्रभाव कहीं टूटने नहीं पाया है, और न कहीं काव्य का सौन्दर्य स्वलित हो पाया है। सत्य तो यह है कि दोहों की समास-पद्धति की कला में बिहारी बहुत प्रवीण थे। उन्होंने शब्दों को उसी प्रकार दोहों में फिट किया है जैसे कोई कुशल जौहरी आभूषणों में रत्न जड़ता है।

पिगल की कसौटी पर भी बिहारी के दोहे खरे उतरते हैं। कहीं भी उनके दोहे में मात्राओं की न्यूनता और अधिकता नहीं है। त्रिकल, द्विकल और यति का ध्यान बिहारी ने बराबर रखा है। बिहारी के

दोहे श्वनि काव्य के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं और उसके सम्बन्ध में कहा गया निम्न दोहा यथार्थ ही है :—

सतसैया के बोहरे ज्यों नाविक के तीर ।

देखत में छोटे लगे घाव करें गंभीर ॥

दोहे जैसे छोटे छन्द में विहारी भावों को इतने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति कर सके, इसका रहस्य यह है कि भाषा पर उनका जवर्दस्त अधिकार था ।

भाषा—उन जैसी, प्रोह, और चुस्त भाषा में काव्य-रचना करने वाला और कोई कवि उत्पन्न ही नहीं हुआ । उनकी भाषा में जो नपातुला शब्द चयन, और अल्प अक्षर होते हुए भी बृहद अर्थ को संभालने में सर्वथा समर्थ वाक्य विन्यास है वह अन्यत्र कहीं ? श्री विश्वनाथ मिश्र के शब्दों में “विहारी की भाषा का परिङ्कित कहना चाहिए । घनानंद आदि दो एक कवियों की बात तो हम नहीं कह सकते, पर भाषा की दृष्टि से विहारी की समता करने वाला भाषा पर वैसे ही अधिकार रखने वाला कोई मुक्तक रचनाकर नहीं दिखाई देता ।”

इतना अवश्य है कि विहारी की भाषा विगुद्ध ब्रज भाषा नहीं है । पूर्वी, बुन्देलखंडी, खड़ी बोली और फारसी, अरबी के शब्द उनकी भाषा में प्रचुर मात्रा में हैं । पर इससे भाषा की स्वाभाविकता कहीं भी नष्ट नहीं हुई । भाव और विषय के अनुरूप उन्होंने अपनी भाषा को गढ़ा है । नगर की नायिका के वर्णन में उनकी शब्दावली और है तथा ग्रामीण नायिका का चित्रण उन्होंने दूसरे प्रकार के शब्दों में किया है । कहीं-कहीं विहारी की भाषा में लिंग विपर्यय मिलता है । एक ही शब्द कहीं पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है कहीं स्त्री लिंग में । पर केवल इस आधार पर व्याकरण की दृष्टि से विहारी की भाषा अव्यवस्थित नहीं कही जा सकती । एकाध स्थानों को छोड़कर वह सर्वथा व्याकरण सम्मत है । विहारी पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने शब्दों को तोड़, मरोड़ बहुत अधिक की है । पर यह कथन सर्वथा पक्षपातपूर्ण और निराधार है । विहारी की भाषा में अन्य कवियों की अपेक्षा शब्दों की

तोड़ मरोड़ बहुत कम हुई है। दो एक स्थानों पर ही 'स्मर' के लिए 'समर' और 'कैकै' के स्थान 'ककै' शब्द मिलते हैं।

संस्कृत की भाँति ब्रजभाषा की प्रकृति समास-बहुला नहीं है। यही कारण है कि जिन कवियों ने ब्रजभाषा को समास-बहुला रूप दिया है उनकी भाषा में सहज स्वाभाविक सौन्दर्य नहीं आने पाया। पर बिहारी के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। दोहे जैसे छोटे छन्द में अधिक भाव भरने के लिए बिहारी ने अनेक स्थानों पर सामाजिक पदावली का सहारा लिया है, पर उससे कहीं भाषा में गतिरोध उत्पन्न नहीं हुआ है।

संक्षेप में बिहारी की भाषा कोमल सरस तथा सँवारी हुई साहित्यिक ब्रजभाषा है। अभिव्यञ्जना की दृष्टि से वह अत्यन्त शक्तिशाली है। काव्य के क्षेत्र में बिहारी को जो इतनी सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय उनकी भाषा को है।

शैली—बिहारी को काव्य-साधना मुक्तक काव्य की शैली को लेकर चली है। मुक्तक काव्य और की दृष्टि से बिहारी कितने सफल हुए है, इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की निम्न पंक्तियों उद्धृत करना अधिक उपयुक्त होगा "मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में चरम उत्कर्ष को पहुँचा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छोटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध-काव्य एक वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा ससंघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी पूर्ण अङ्ग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय खंड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है। अतः जिस कवि में कल्पना

की
होगी
विहारी

विवे

सफ

डा

लगे

विह

ली

के व

कवि

के त

वाल

की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता विहारी में पूर्ण रूप से वर्तमान थी।”

अन्य प्रश्न—

प्रश्न १. विहारी के शृंगार वर्णन की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न २. विहारी के संयोग (शृंगार और वियोग शृंगार की विवेचना कीजिए।

प्रश्न ३—विहारी के श्रुत वर्णन की विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न ४—विहारी के काव्य में कला-पक्ष (भाषा-शैली, अलंकार की सफलता पर समीक्षात्मक विचार कीजिए।

नोट—इन सभी प्रश्नों का उत्तर प्रश्न १ में पढ़िए।

प्रश्न २—विहारी की लोक-प्रसिद्धि के कारणों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

(क) प्रश्न—“सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तोर। देखत कों छोटे लगे, घाव करें गम्भीर।” विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न—“हिन्दी में समास-पद्धति की शक्ति का परिचय सबसे अधिक विहारी ने दिया है। सागर : सागर भरने की कला उन्होंने सिद्ध कर ली थी। इसीलिए उनके दं. हे नाटकीय सौन्दर्य से युक्त काव्य-प्रेमियों के कंठ-हार हो गये।”

उपयुक्त कथन की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए।

उत्तर—

विहारी को जो सम्मान मिला वह इसलिए नहीं कि वे कविता के क्षेत्र में अकेले हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपनी रचना के लिए शृंगार का क्षेत्र चुना, उसमें उसी ढंग की मुक्तक रचना करने वाला अन्य कवि उनकी समकक्षता में नहीं आ सका। विहारी के काव्य

में चुम्बक की भांति कुछ ऐसा आकर्षण है जो बरबस ही हृदय को खींच लेता है ।

बिहारी के एक-एक दोहे में विशेषताएँ भरी पड़ी हैं । जितना ही उनको गहराई से देखा जाय, मतिराम की नायिका की तरह “ज्यों ज्यों निहारिये नेरेहु नैनन त्यों त्यों खरी निकसै सी निकाई” की सी दशा हो जाती है ।

बिहारी की सतसई में ‘नूतन नूतन पद-पद’ की व्यापक भावना है । जिसके भावों की गहराई और सौन्दर्य की थाह पाने में न जाने कितने कुशल कलाकार भी अकुशल सिद्ध हो गये । बिहारी की सतसई भी उनकी नायिका की तरह—

लिखन बैठि जाकी सबिह,

गहि गहि गरब गरुर ।

भये न केते :जगत के,

चतुर चितेरे कूर ॥”

क्षिण क्षिण परिवर्तित वर्णन-सौन्दर्य से मुक्त है ।

बिहारी के काव्य में प्रत्येक की रचि की सामग्री मिल जाती है, इसलिए वह काव्य-रसिक और जन-साधारण के कंठ का हार हो रही है । एक शृंगारी व्यक्ति आनंद की हिलोरे लेता है तो दूसरी ओर उक्त “सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज !” भावना प्रेरित होकर बिहारी के ‘शब्दों में यह जग कांचों काँच सो’ कहकर प्रभु से निम्न प्रकार प्रार्थना करता है—

मोहूँ दीजे मोसु ज्यों अनेक पतिन दियो

+ × ×

हरि कीजत तुमसे यही,

बिनती बार हजार ।

जेहि तेहि भांति परौ रहौ,

रहौ डरो दरनार ॥

पाठक बिहारी को षट-श्रुत वर्णन की प्रकृति-माधुरी का आनन्द लेता हुआ जब उनकी बहुवर्णिता को देखता तो कभी उन्हें वैद्य के रूप में “बहुधन लै अहसान के पारो देते सरहि” कहता हुआ सुनकर हँस पड़ता है, कभी ‘मंगल बिन्दु सुरंग तथा तियतिथि-तरनि किसोर वय’ आदि को पढ़कर उनके ज्योतिष ज्ञान पर लड्डू होता है, तो कभी उनके साथ में “मैं समझयो निरधार यह जग काँचों काँच सो” कहकर विरक्ति की भावना में भर जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे किसी भी रुचि का पाठक क्यों न हो, उसे अपनी रुचि के अनुकूल ‘सतसई’ में प्रचुर सामग्री मिल जाती है।

बिहारी को यह समास-पद्धति की सिद्धि प्राप्त थी कि जिसके सहारे उन्होंने सुन्दर चित्रपट के से दृश्य उपस्थित कर दिये हैं। दोहरे को पढ़ते ही पाठक के समक्ष चित्रपट का पर्दा सा उठ जाता है और वह सुन्दर अभिनय सा देखने लगता है। एक मुग्धा नायिका का दृश्य देखिए—

वरतस लालच लाल की,

मुरली धरी लुकाय ।

सौह करै, भौंहनु हँसै,

देन कहै नटि जाय ॥

इसके द्वारा कवि ने नायिका की सजीवता, फालतू उमंग, चापल्य, विनोद प्रियता का चित्र अंकित कर दिया है। सिनेमा की रील सी खुलने लगती है। ‘विलास’ भाव की सुन्दर छटा है।

बिहारी के दोहों में यह निपुणता और कसावट उनकी समास-पद्धति से आ गई है कि वे थोड़े में बहुत कह गये। दोहों की दो पंक्तियाँ भावों की चित्रशाला सी उपस्थित कर देती हैं। उनके दोहों के लिए कहा जाता है—

सतसेया के दोहरे,

ज्यों नावक के तीर ।

देखत के छोटे लगै,

भाव करै गम्भीर ॥

नलिका के द्वारा चलाये गये तीर छोटे होने पर भी गहरा घाव करते हैं । बिहारी के दोहे छोटे होने पर भी भारी चोट करते हैं ।

दोहे की समास-वृद्धि का पता सांग रूपकों के निर्वाह, पर्याप्त-व्यापारों के समाहार और विविध चेष्टाओं के एक साथ संयोजन से लगाया जा सकता है । निम्न सौरठे में सांग रूपक के सहारे बिहारी ने नेत्रों को पूरा मलंग (मुसलमान फकीर) बना दिया है—

कौड़ा, आँसू, बूँद,
करि साँकर बरुनी सजल ।

कोने बदन निमृन्द,
हग-मलंग डारे रहत ॥

असंगति अलंकार के सहारे बिहारी ने स्वाभाविक नाटकीय दृश्य ही उपस्थित कर दिया है । सूत यदि उलझ जाय तो टूट जाया करता है, फिर से उसे जोड़ने में गाँठ पड़ जाती है । जो उलझता है वही टूटता है । उसे जोड़ा जाय तो जुड़ता भी वही है और गाँठ भी उसी में पड़ती है । पर प्रेम-क्षेत्र में बातें अनोखी होती हैं । बिहारी की कला की कुशलता देखिए—

हग उरभक्त, टूटत कुटुम,
जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन हिये,
दर्ई नई यह रीति ॥

चेष्टा विधान के एक उदाहरण में देखिए । बिहारी ने एक लम्बे प्रसंग को दोहे के अन्तर्गत ही कितनी कुशलता से समेट लिया है । श्रीकृष्ण जी ने ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्धन उठाया । बीच में कहीं उनकी दृष्टि राधा पर पड़ गई । इसलिए प्रेमोद्रेक हो जाने से उन्हें कम्प हो गया, हाथ काँपने लगा पर्वत डगमगाने लगा । ब्रजवासी विह्वल हो गये । अब क्या होगा ? जब श्रीकृष्ण को यह बात श्रात हुई तो उन्हें बड़ी लज्जा आई—

डिगत पान डिगुलात गिरि,
लखि सब ब्रज बेहाल ।
कँप किसोरी के दरस,
खरे सकाने लाल ॥

एक उदाहरण और लीजिए इसमें नायिका को चेष्टाओं का कितना सिमटा हुआ रूप कवि ने चतुरता से समास-पद्धति के समाहार से उपस्थित किया है—

भौंहनि त्रासति, मुंह नटति,
आँखिन सों लपटाति ।
ऐंच छुड़ावति कर इंची,
आगे आवति जाति ॥

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि बिहारी के काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं जो पाठकों को स्वयं ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं—

१—बिहारी ने लक्षण न लिखकर रीति ग्रंथों की पृष्ठभूमि में सुन्दर उदाहरण दिये हैं ।

२—बिहारी ने दोहों में गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है ।

३—बिहारी में समास-गुण तो अधिक है ही किन्तु वे कल्पना, भाव सुकुमारता और शब्द-चयन चातुर्य में भी बहुत कुशल थे ।

४—बिहारी ने शृंगार रस के सभी अङ्गों को अपनाया है और प्रायः सभी अलङ्कारों का भावाभिव्यक्ति के लिए काव्य में प्रयोग किया है ।

५—बिहारी ने भक्ति और नीति के भी सुन्दर दोहे लिखे हैं ।

६—बिहारी के दोहों में ब्रज-भाषा का पूर्ण माधुर्य प्रस्फुटित हुआ है

७—बिहारी ने अपने समय के समाज का स्वाभाविक वर्णन किया है ।

८—विहारी के प्रकृति-निरीक्षण के चित्र भी अनूठे हैं ।

विहारी सतसई में रस का सागर लहराता है । मनुष्य की भावना तरंगों के सहज-सुकुमार सजीव चित्र खींचने में विहारी की प्रतिभा अप्रतिम है । मानव जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर, प्राकृतिक तारतम्य का साम्य मिलकर अर्थ गाम्भीर्य पूर्ण, भावानुगामिनी, सरस भाषा में मंजुल भावों की सजीव कल्पना मूर्तियों को संगीत मधुर काव्य-कला के क्षेत्र में उपस्थित करने में विहारी अद्वितीय हैं । सतसई में नवरस, तैत्तिरीय संचारी भाव, नव स्थायी भाव, नायक और, नायिका भेद हाव, सखी, दूती, संयोग, विरह, गान, परिहाम, हास, नखशिख, छः श्रुत, भक्ति, नीति, अन्योक्ति, दर्शन, व्यंग्य देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता है । विहारी सतसई इसीलिए अपने रचना काल में लेकर अब तक काव्य रसिकों का कंठहार रही है । गोस्वामी तुलसीदास जी के 'राम-चरित मानस' के बाद सतसई ही समस्त समाज में सबसे अधिक समादृत हुई है । जितना शृंगार-रस वाटिका से इस सुविकसित और सुगन्धित सुमन का सौन्दर्य सहृदयों के चित्त में चुभा और आँखों में खुदा है, उतना और का नहीं । अन्यान्य अनेक कवियों की कविता-कामनियों भी कमनीयता में कम नहीं, किन्तु सतसई-सुन्दरी की सी सुन्दरता उनमें कहाँ है ?

व्याख्याएँ नेत्र वर्णन

जोगन जुगति.....नैन ।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत प्रसंग में काम-चेष्टाओं से परिपूर्ण हुए नायिका के नेत्रों का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—नायिका पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो गई है । कामदेव ने उसके अंग-अंग पर निवास कर लिया है । उसके बड़े-बड़े कानों तक लम्बा-यमान हो रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव रूपी महामुनि ने नेत्रों को योग की सब युक्ति बता दी है । जिस प्रकार महर्षि के उपदेश से विरक्त होकर मनुष्य वनवासी हो जाता है । उसी प्रकार से प्रियतम का

संयोग प्राप्त करने के लिए नायिका के नेत्र भी कानों तक लम्बायमान हो रहे हैं ।

विशेष—१—सखी का वचन सखी के प्रति भी हो सकता है, जिसमें वह नायिका के नेत्रों की प्रशंसा कर रही है ।

२—जैसे कालिदास ने वेदान्तिक सिद्धान्त “अणोरणीयान्महतो महोयान्” की पूर्ति शृंगार रस में की थी, उसी प्रकार बिहारी ने भी इस दोहे में योग सम्बन्धी सिद्धांत की पूर्ति शृंगार में की है । इससे कवि की प्रतिभा को विलक्षणता प्रकट होती है ।

काव्य सौंदर्य—१—नायिका ज्ञात यौवना मुग्धा है ।

२—अलंकार जोग अद्वैतता और कानन में श्लेष, “महामुनि मैं” में रूपक और पूर्ण दोसा में सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है ।

खेलन सिखए.....मिकार ।

प्रसंग—सखी नायिका के नेत्रों के सौंदर्य और चंचलता का वर्णन कर रही है ।

व्याख्या—हे सखी ! तेरे कानों तक लम्बायमान नेत्र अब चतुर पुरुषों का शिकार करने में भी दक्ष हो गये हैं । इनकी चतुर शिकारी कामदेव ने धनुर्वेद की शिक्षा देकर पूर्ण शिकारी बना दिया है । इसलिए अब ये अचूक लक्ष्य फैकते हैं । तात्पर्य यह है नेत्रों के बाणों से चतुर से चतुर व्यक्ति भी घायल हो जाता है ।

विशेष—‘नैन मृग’ को शिकारी कहना असंगत सा लगता है क्योंकि मृगों का शिकार होता है किन्तु वे करते नहीं ।

काव्य सोन्दर्य—१—नायिका गणिका है क्योंकि गणिका ही इस प्रकार शिकार करेगी ।

२ अलंकार—सांगरूपक ।

औरे ओप पट लाज ।

प्रसंग—सखी नायिका से उसके नेत्रों की पुतलियों की प्रशंसा कर रही है ।

व्याख्या—हे लाडिली ! आज तेरे नेत्र की पुतलियों का सौन्दर्य कुछ और ही प्रकार की मधुरिमा और आभा से युक्त है । मैं तो तुझे बहुत

सी सुन्दरियों की सिरताज समझती हूँ। तू नायक के स्नेह को मणि बनी हुई है वह तुझे सबसे अधिक चाहता है।

विशेष—इसमें दक्षिण नायक और नायिका परकीया प्रतीत होती है।
काव्य-सौन्दर्य—१—नायिका मुग्धा है।

२—‘और’ में भेदकातिशयोक्ति तथा गनी, घनी, मनी, छनी, बनी, में अनुप्रास और शब्द साम्य की छटा देखने योग्य है।

अनियारे दीरघ—“मुजान।

शब्दार्थ—अनियारे = नुकीले। दीरघ = बड़े।

प्रसंग—सखी नायिका से उसके नेत्रों की प्रशंसा करती हुई कह रही है।

व्याख्या—हे लाड़िली ! नुकीले बड़े-बड़े नेत्रों वाली युवतियाँ तो बहुत सी हैं, किन्तु तेरी चितवन में कुछ और ही अनोखापन है, जिसके वश में चतुर नायक भी हो जाते हैं।

विशेष—सखी का वचन सखी के प्रति भी हो सकता है। यदि ‘मुजान’ को बहुवचन माने तो नायिका गणिका होगी।

काव्य सौन्दर्य—१—नायिका ज्ञात यौवना मुग्धा है।

२—अलंकार—‘किती न’ में काकुवक्रोक्ति, ‘औरे कछू’ में भेदकातिशयोक्ति है।

सायक सम—“.....” लजात।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत प्रसंग में नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—उस नायिका के जादुगर नेत्र संध्या के समान हैं और वे अपने शरीर की श्वेत, श्याम, रतनार तीन रंगों से रंगे हुए हैं। इसी कारण उनको देखकर दुखित होकर मछली तो पानी में छिप जाती है और कमल लज्जित हो जाता है (संध्या होते ही मछली जल की गहरी तह में बैठ जाती है और कमल मुँद जाते हैं।)

विशेष—१—सखी का कथन सखी के प्रति भी हो सकता है। वह नायिका के नेत्रों की प्रशंसा कर रही है।

२—‘त्रिविध रंग गात’ के प्रसंग में निम्न दोहा दृष्टव्य है ।

अमिय हलाहल मद भरे,
श्वेत, स्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि-झुकि परत,
जेहि चितवत इक बार ॥

ऋतु-वर्णन

झुकि रसाल.....मधु ग्रंथ ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि वसन्त की स्वाभाविक माधुरी का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—आम की मंजरी की सुगन्धित से झुककर और बासन्तीलता की मधुर गन्ध सने हुए, पुष्परस की मदिरा से अन्धे होकर भौंरों के समूह जगह-जगह पर झूमते हुए फिरते हैं और पुष्पित लताओं पर टूट पड़ते हैं ।

विशेष—इस दोहे को कवि की उक्ति मानें तो स्वभावोक्ति सखी । का वचन नायिका के प्रति मानें तो उद्दीपन कराके संगठन का उद्देश्य होने से पर्यायोक्ति । नायक का वचन नायिका के प्रति मानने से वसन्त में विदेश-यात्रा रोकने के भाव से आक्षेप । स्वयं दूती का वचन पथिक के प्रति मानें तो पर्यायोक्ति । रूपगर्विता नायिका का वचन भ्रमर के प्रति मानने से प्रस्तुताङ्कुर । नायक के पास सन्देश ले जाने के उद्देश्य से नायिका का कथन सखी के प्रति मानें तो पर्यायोक्ति ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

चुँवत स्वेद.....बटोही बाय ।

शब्दार्थ—विरमाय = सुस्ताता हुआ । बटोही = मुसाफिर । बाय = पवन ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि बासन्ती वायु का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—पवन बटोही के रूप में दक्षिण दिशा में आ रहा है। उससे पसीना रूपी मकरन्द कण कपक रहा है और वह प्रति घृत्न के नीचे सुस्ताता हुआ चल रहा है।

विशेष—इस दोहे में कवि ने पवन का मानवीकरण किया है। उसे पुल्लिंग माना है।

अलंकार—रूपक ।

बैठ रही..... चाहति छाँह ।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत दोहे में ग्रीष्म की भयंकरता का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—जेठ में दुपहर की तपन की देखकर छाया भी छाया चाहती है। इसी कारण छाया अपने शरीर रूपी घर में बैठ कर अति सघन वन में ही बैठ रही है।

विशेष—इस दोहा से ऐसा भान होता है कि जेठ की दोपहरों में नायक और नायिका किसी कंज में बैठे हुए हैं। किसी कारण वश नायिका रुठ कर घर जाना चाहती है। इस पर सुखी उपयुक्त दोहा कह कर रोकना चाहती है। अतः इस दशा में प्रस्तुतांकुर अलंकार मानना होगा।

अलंकार—कवि की उक्ति मान कर अत्युक्ति अलंकार है।

कहलाने.....निदाघ ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि ग्रीष्म की भयंकरता का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—प्रश्न—इस चित्र में सर्प और मोर मृग और बाघ किस कारण एक साथ बैठे दिखाये गये हैं ! (उत्तर) कठोर तापयुक्त ग्रीष्म ऋतु ने संसार को तपोवन सा बना दिया है। तपोवन में सहज शत्रु भी एक साथ रहते हैं। कोई किसी को सताता नहीं, ऐसा तत्त्वियों का प्रभाव माना जाता है।

विशेष—एक बार एक चतुर चित्रकार ग्रीष्म ऋतु का चित्र बनाकर राजा जयसिंह के दरबार में लाया। उस चित्र में यह दिखाया गया था

किं जेठ की कड़ी धूप में हाँफता हुआ सर्प कहीं छाया न देखकर मोर के पंखों की छाया में जा बैठा। मृग गर्मी से व्याकुल होकर बाध की माँद में जा बैठा। इस चित्र को देखकर दरबार में किसी ने कुछ न समझा। महाराज जयसिंह ने इस दोहे का पूर्वाद् कह कर दरबारियों से प्रश्न किया। उत्तर में विहारी ने उत्तराद् कह कर चित्र का मर्म खोल दिया।

अलंकार—पूर्वाद् में 'चित्रोत्तर' है अर्थात् प्रश्न के ही शब्द उत्तर के शब्द हैं। प्रश्न में कहलाने का पहला अर्थ और उत्तर में दूसरा अर्थलगता है। उत्तराद् में उपमा 'कहलाने' शब्द के दूसरे अर्थ का समर्थन करने के लिए उत्तराद् का कथन है, अतः 'काव्यलिंग' भी कह सकते हैं।

अरुन सरोसह.... अनन्द ।

शब्दार्थ—अरुन सरोसह = लाल कमल। आव = आकर।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि शरद का वर्णन उसकी समानता सुन्दरी से देता हुआ कर रहा है।

व्याख्या—शरद सुन्दरी बनी हुई शोभा दे रही है। खिले हुए लाल कमल ही शरद सुन्दरी के कर और चरण हैं खंजन पक्षी नेत्र हैं और चंद्रमा मुख है। जिस प्रकार सुन्दरी शोभा देती है, उसी प्रकार से समय पर आकर शरद शोभा दे रही है।

अलंकार—शरद में सुन्दरी का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

श्रंगार-वर्णन

नितप्रति.....अनेक ।

शब्दार्थ—नितप्रति = सदा। एकत ही—एक समान ही। वैस = अवस्था। बरन = जाति नाम के अक्षर—श्यामा, श्याम)

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि राधा-कृष्ण के अपार सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—कृष्ण और राधा सदा साथ ही साथ रहते हैं। उनकी अवस्था जाति और भन एक समान हैं। ऐसी युगुल मूर्तिकी माधुरी देखने के लिए आँखों के अनेक जोड़े चाहिए।

काव्य-सौन्दर्य—१—कृष्ण अनुकूल नायक के रूप में हैं।

२—अलंकार—सम।

यह विनसत.....सुदरसन देहु।

प्रसंग—दूती मिलन कराने के उद्देश्य से नायक से कह रही है।

व्याख्या—हे लाल ! इस विनष्ट होते हुए रत्न की रक्षा करके संसार में बड़ा यश लीजिए। चलो, चलकर विरह में जलती हुई नायिका की रक्षा करो। वह विरह के कठिन ज्वर में जल रही है, अपने सुन्दर दर्शन की औषधि देकर जीवन दान दो।

विशेष—दोहे के उत्तरार्द्ध से ज्ञात होता है कि नायक वैद्यसी हैं, दूती वैद्यिक के श्लिष्ट शब्दों में दूतत्व करती है। बहुत-सी दूतियाँ ऐसी ही भाषा में दूतत्व कराती हैं, जिसके दो अर्थ हो सकते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—१—नायिका परकीया है—

अलंकार—श्लेष।

जहाँ जहाँ वह ठौर।

शब्दार्थ—सुगम सिरमौर = भाग्यवानों में शिरोमणि यहाँ पर रूप-वानों में शिरोमणि।

प्रसंग—नायिका (राधा) कृष्ण का स्मरण करती हुई कह रही है।

व्याख्या—जहाँ जहाँ उस अत्यन्त सुन्दर श्याम को खड़े देखा है, अब भी उनकी अनुपस्थिति में भी, मेरे नेत्र उस स्थान को टकटकी बाँध-कर बड़ी देर तक देखा करते हैं।

अलंकार—विभावना, स्मरण।

सौन्दर्य-वर्णन

मंगल विन्दु.....लोचन जगत ।

प्रसंग—नायिका के सौन्दर्य से प्रभावित होकर नायक सखी के प्रति कह रहे हैं ।

व्याख्या—नायिका का मुख चन्द्रमा के समान है । उनके माथे पर लगा हुआ रोरी का विन्दु मंगल है और केसर का आड़ा टीका वृहस्पति है । इन तीनों ने एक ही राशि पाकर संसार के नेत्रों को जलमय कर डाला है । अर्थात् देखने से दर्शकों के नेत्रों में आनन्द के आँसू आते हैं और न देखने से दुःख के ।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार यदि मंगल चन्द्रमा और वृहस्पति तीनों एक राशि पर आ जायें तो बहुत जल वृष्टि का योग होता है । इसी सिद्धान्त को विहारी ने उपर्युक्त सोरठा में घटाया है ।

काव्य-सौन्दर्य—१—नायिका स्वकीया प्रतीत होती है, क्योंकि मस्तक पर विन्दु होने से वह विवाहिता है ।

२—शृंगार रस ।

३—अलंकार—श्लेष से पुष्ट सांगरूपक ।

मकराकृति गोपाल लसत निसान ।

शब्दार्थ—मकराकृति = मछली के आकार के । धस्यो = बैठा है, भीतर प्रवेश किया है । समर = (स्मर) कामदेव । निसान = ध्वजा ।

प्रसंग—सखी नायिका से कृष्ण के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रही है ।

व्याख्या—देख, श्रीकृष्ण के कानों में मछली के आकार के कुण्डल शोभा दे रहे हैं । वे ऐसे जान पड़ते हैं । मानो कामदेव श्रीकृष्ण के हृदय-गढ़ में प्रवेश कर गया है और ये कुण्डल उसकी ध्वजाएँ हैं जो गढ़ के द्वार पर शोभा दे रही हैं ।

विशेष—जब कोई राजा किसी दूसरे राजा की मेंट के लिए उसके गढ़ में जाता है, तब राजा तो भीतर चला जाता है, पर उसके ध्वजादि राजचिन्ह द्वार पर ही रहते हैं ।

अलंकार—उक्त विषया वस्तुत्पेक्षा ।

लिखन बैठ.....चतुर चितेरे कूर ।

प्रसंग—सखी नायक से नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रही है ।

केन्द्रीय भाव—सखी नायिका के अलौकिक सौंदर्य-वर्णन से नायक को प्रभावित करके उसे नायिका से मिलाना चाहती है । कवि यहाँ पर इसी तथ्य को पल्लवित कर रहा है ।

व्याख्या—हे लाल ! मैं उस नायिका से तुम्हारा प्रेम कराना चाहती हूँ जिसका चित्र बनाने के लिए अहंकार युक्त होकर संसार के कितने ही चतुर चित्रकार आये किन्तु वे उसका चित्र न बना सके और वे अकुशल सिद्ध होकर बेवकूफ से लौट गये ।

विशेष—१—चित्रकारों से चित्र न बन सकने का कारण नायिका का रूपाधिक्य है । उसका रूप देखकर किसी को स्तम्भ होता है तो हाथ ही सक जाता है, किसी को कम्प होता तो चित्र की रेखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती, किसी को स्वेद होता तो चित्र के रंगों पर टपक कर उन्हें फीका कर देता ।

वयःसन्धिको प्राप्त मुग्धा नायिका है । अतः उसका सौंदर्य प्रतिक्षण बदलता रहता है । चित्र बनाकर पुनः असली नायिका से मिलान करने में जितना समय लगता है उतने ही समय में चित्र और असली नायिक की रूप छटा, यौवनोत्थान, प्रत्यंग पुष्टि इत्यादि में अंतर पड़ जाता है ।

अलंकार—वक्रोक्ति, विशेषक्ति

चिरं जीवौ.....वीर ।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत प्रसंग में हास्य की छटा बिखेरता हुआ राधा-कृष्ण के गर्भीर स्नेह का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—यह जोड़ी दीर्घ जीवी हो, इन दोनों राधा और कृष्ण में गहरा प्रेम जुड़ना ही चाहिए क्योंकि दोनों में कम कोई नहीं है और दोनों की जात भी समान ही है । राधा वृषभानु की कन्या है और कृष्ण बलराम के भाई हैं । (अथवा व्यंग से ये बैल की बहिन और ये बैल के भाई हैं) ।

विशेष—सखी का कथन सखी के प्रति भी लिया जा सकता है ।

काव्य-सौन्दर्य—१—रस-हास्य ।

२ अलङ्कार—श्लेष वक्रोक्ति, सम (वरणत जहाँ विशुद्ध मति यथायोग्य के संग) ।

इक भीजै....वार ।

प्रज्ञा—कवि प्रस्तुत प्रसंग में चढ़ती हुई युवावस्था का वर्णन कर रहा है ।

केन्द्रीय-भाव—जिस प्रकार चढ़ती हुई नदी उपद्रव करती है उसी प्रकार से प्रारम्भिक युवावस्था भी मनुष्य को उसके पथ से विचलित कर देती है । प्रस्तुत प्रसंग में कवि इसी तथ्य को पल्लवित कर रहा है ।

व्याख्या—चढ़ती हुई जवानी में अपने को संभालना मनुष्य के लिए कठिन है । जिस प्रकार जब नदी बाढ़ के समय कूलों को तोड़कर उमड़ पड़ती है और अपने तटवर्ती वस्तुओं को समेट कर उपद्रव करती है, इस प्रकार से चढ़ती हुई जवानी में मनुष्य मर्यादा के कूलों को छोड़कर अपथ चलने लगता है ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति तथा वर्य और अव वर्य का एक इ, धर्म न होने से दीपक है ।

कैसे छोटे....चाम ।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट कर रहा है कि तुच्छ और नीच व्यक्तियों से किसी का भी कार्य पूरा नहीं होता ।

व्याख्या—जिस प्रकार चूहे के चमड़े से नगाड़ा नाम का बड़ा बाजा नहीं मड़ा जा सकता । उसी प्रकार से तुच्छ और छोटे आदमियों से बड़े मनुष्यों का काम पूरा नहीं हो सकता ।

अलंकार—दृष्टान्त ।

मैं समुभयौ....जहाँ ।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग में कवि ब्रह्म की व्यापक सत्ता का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—मैंने निश्चय करके समझ लिया है कि यह अस्थायी संसार काँच (आरसी) के समान है। इसमें ईश्वर का एक ही रूप असंख्य रूपों में प्रतिबिम्बित हो रहा है।

विशेष—१—इसमें शंकराचार्य के प्रतिबिम्बवाद के सिद्धान्त की भावना व्यक्त की गई है।

२—इस प्रसंग में 'एकोहं बहुस्यामि' की भावना है।

३—अलंकार—उपमा और प्रमाण।

गिरि ते.....पगार।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग में कवि रसिकता का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—जिस प्रेम-समुद्र में रसिकों के पर्वत से भी अधिक ऊँचे मन डूब जाते हैं। वही प्रेम-समुद्र पशुवत अज्ञानी नरों को उथले पानी का गढ़ा सा जान पड़ता है अर्थात् उसका उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता।

तंत्रीनाद.....सब अंग।

प्रसंग—कवि मानव के लिए संगीत काव्य और प्रेम के महत्व का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—वाद्य, कवित्व गान और प्रेम के रस में जो लोग सर्वांग डूब गये वे ही इस भव-समुद्र को पार कर गये और इन रसों में नहीं डूबे वे ही इस भाव-पारावार में डूब गये।

विशेष—काव्य और संगीत मनुष्य के हृदय को समत्व की एक ऐसी भावभूमि पर ले जाता है, जहाँ पहुँच कर वह अपनत्व और परत्व की भावना से रहित हो जाता है। उसका हृदय सात्विक सरल भावों से परिपूर्ण हो जाता है।

अलंकार विरोधामास।

❀ इति ❀

गार
पों
की

वे
नीं
हीं

का

गं
हीं

वी
को
से

।

USEFUL BOOKS

	Rs N.P.
1. B. A. Guess Papers Solved on Noorjahan.	0.50
2. B. A. Guess Papers Solved on Acharya Chanak.	0.50
3. B. A. Guess Papers Solved on Hindi Prose. Part I	1.00
4. B. A. Guess Papers Solved on Hindi Poetry. Part I	1.00
5. B. A. Guess Papers Solved on Modern Short Stories.	2.00
6. B. A. Guess Papers Solved on Essays & Essayists (Sketches). Part I	1.75
7. B. A. Guess Papers Solved on English Literature (Prose.) Part I	1.25
8. B. A. Guess Papers Solved on English Literature (Poetry). Part I	1.75
9. B. A. Guess Papers Solved on Merchant of Venice	0.50
12. गैस पेपर ललित विज्ञान	१.००
11. „ अज्ञातशत्रु	०.७५
12. „ भक्ति एवं रीतिकान्न के कवि (जायसी, सूर, तुलसी केशव, बिहारी)	१.००
13. „ वी० ए०-रस दोष अलंकार	०.२५
14. Essays For B. A. Students & Competitive Examinations By Prof. Kulkarni, M. A. & Prof. Mundra, M. A. 7th Edition.	7.00
15. Prabandh Payodhi Part II (Hindu Essays) for B. A. Students By Dr. R. P. Chaturvedi, M. A., Ph. D.	3.00
16. B. A. Guess Papers on One Act Plays Part 2	1.00
17. B. A. Guess Papers on Biographies „	0.75
18. B. A. Guess Papers on Shishigupta „	1.00

Apply to :—

DUM DUMJI & Co., (Regd.)

Hospital Road, Agra.